भगवान श्रीकृष्ण की :—

रास-लीला

की

आध्यात्मिक-व्याख्या

—विश्वनाथ शास्त्री

भगवान श्रीकृष्ण की :—

रास-लीला

की

आध्यात्मिक-व्याख्या

लेखक :—

स्वामी विश्वेश्वरानन्द गिरि

अनुवादक तथा प्रकाशक—

श्री विश्वनाथ शास्त्री

प्रथम संस्करण
२०००

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी
सं० २०१० विक्रमी

विषय-सूची

अनुवादक के दो शब्द !

यह रास-लीला की आध्यात्मिक व्याख्या बंगला-भाषामे छपा 'रास-लीला' ग्रन्थ का अनुवाद है। हिन्दू-संस्कृति के एक परम पवित्र और आदर्श-श्रेष्ठ महानुभाव द्वारा मुझे इसका अनुवाद कार्य मिला था। ग्रन्थ पढ़ने पर मेरी भी श्रद्धा की रीझ वड़ गई। हिन्दी भाषा के लिये भी नवीन मानकर इसका अनुवाद कर डाला। इस ग्रन्थके मूल तत्वदर्शी पूज्य श्री स्वामी विशुद्धानन्दजी महाराजने अनुवादको बारीकि से जांची है। उनके ही विशेष आग्रहसे इसमे कुछ शब्द ज्यों के त्यों रक्खे गये हैं। स्वामीजी की आसक्ति और उपकार बन्दनीय हैं।

यदि अद्वैत-भक्ति-साधनाके भगवद्भक्तों का इससे कुछ उपकार हुआ, तो लेखक और अनुवादक पाठकों के अनुग्रह के पात्र अवश्य होंगे ?

भक्त-भक्ति और भगवान को ही इस आकलन की अर्घ-अञ्जलि दे रहा हूं।

—विश्वनाथ

ॐ.

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य ।

यः पठेत् प्रयतो नित्यं, श्लोकं भागवतं सुत ।
अष्टादश पुराणानां, फलमाप्नोति मानवः ॥

हे पुत्र ! जो व्यक्ति प्रतिदिन श्रद्धा और भक्तिके साथ, पवित्र हृदयसे इस भागवतके एक भी श्लोकका पाठ करता है, वह आठों पुराणोंके पाठका फल पाता है ।

भक्ति से लाभ

नैष्कर्म्यपप्य च्युत भाव वर्जितम् ।
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ॥

विमल ब्रह्मज्ञान भी भगवद्भक्तिसे रहित होनेपर शोभा नहीं पाता है ।

भक्तिः परेशाणुभवो विरक्ति-
रन्यत्र चैषः त्रिकः एककालः ;
प्रपंद्य मानस्य यथा श्नतः स्यु-
स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुधोऽपायोऽनुघासम् ॥

शरणागत भक्तकी भगवानमें सम्पूर्ण भक्ति, परमेश्वरका साक्षात्कार एवं भगवानको छोड़कर बाकी सभी विषयोंसे वैराग्य ; ये तीनों मिलकर उसी प्रकार हैं, जैसा कि खानेवालोंको, प्रत्येक कौरमे तुष्टि-पुष्टि मिलती है और भूख मिटती है, ठीक उसी प्रकार भक्ति तीनों तत्वोंको देती है ।

विषय-प्रवेश

—:*:—

भगवान व्यासदेव जब वेदोंका विभाग पुराण एवं महाभारतादि शास्त्रोंकी रचना करके भी तृप्त नहीं हो सके। तब एक दिन सरस्वती नदीके किनारे अपने आश्रममें उदास होकर वे बैठे थे, उसी समय देवर्षि नारद वहाँ आ पड़े। व्यासदेवको उदास देखकर उनके जैसा वेदवित् तत्वज्ञ पुरुषकी उदासीका क्या कारण हो सकता है; इसे पूछा? देवर्षि नारदके वाक्योंको सुनकर भगवान व्यासदेवने देवर्षिको कहा—"हे देवर्षे! आप महायोगी हैं, आप प्राणियोंके अन्तःकरणकी सभी भावनाओंसे अच्छी तरह जानकार हैं। मैं श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ, वेद विहित धर्मोंका आचरणशील एवं सभी विषयों में सम्यक पारदर्शी होकर भी सन्तोष नहीं पारहा हूँ। आप योगकी दृष्टिका अवलम्बन कर विचारें और फिर मुझसे बतावें कि "किस वस्तुके अभावके कारण उदासी आकर मेरे हृदयको प्रभावित करती है?" देवर्षि नारदने भगवान व्यासदेवकी बातोंको सुनकर उनसे कहा—"मुनिवर! आपने भगवानके निर्मल यशोंका कीर्त्तन नहीं किया है। केवल तत्वोंके ज्ञानसे भगवान प्रसन्न नहीं होते हैं। भगवत्प्रेमका अभाव ही आपकी उदासीका कारण है। अतएव आप भगवानके विमल यशोंका कीर्तन करें? इसे निश्चय समझिये कि—

"नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाव वर्जितं।
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ॥"

अविद्याको उखाड़ फेकनेवाला निर्मल ब्रह्म-ज्ञान भी, भगवानकी भक्तिसे शून्य होनेपर शोभा नहीं पाता है।" आप समाधिके द्वारा अपने पवित्र हृदयमें भगवानकी लीलाके तत्वोंको पाकर परमानन्दसे परम सन्तोष पावें।

भगवान व्यासदेवने नारदजीके उपदेशको सुनकर समाधिस्थ हो अपने अन्तःकरणमें, परिपूर्ण स्वभाव, परमपुरुष भगवान एवं उनके अधीन मायाका दर्शन किया। उन्होंने और भी साफ साफ देख पाया कि जीव इस मायाके प्रभावमें स्वयं त्रिगुणातीत होकर भी, अपने आनन्द-स्वरूपको भूलकर तथा सभी अनर्थोंके जड़ देहाभिमानमें पड़कर कर्तृत्व और भोक्तृत्वको पारहा है। व्यासदेवने और भी देखा कि इस परमपुरुष भगवानमें अचलाभक्ति ही संसार के तीनों तापोंको जड़से विनाश कर देनेका सामर्थ रखती है। इस प्रकार समाधिके द्वारा भगवानकी वैष्णवी-मायाको अपने हृदयमें देखकर व्यासजीने मानवके कल्याणार्थ इस श्रीमद्भागवत संहिताकी रचना की है।

परमार्थ सद् वस्तु है। परमानन्द इस ग्रन्थका प्रतिपाद्य-विषय है। दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति एवं परमानन्दकी प्राप्ति ही इस भागवत ग्रन्थका प्रयोजन है। भगवद्भक्त मुमुक्षु साधक इस ग्रन्थके अधिकारी हैं। परम आनन्द स्वरूप, अमृत स्वरूप सद्वस्तुको तथा

इन सभी प्रकारके परिच्छेदोंसे विलग, अखण्डैकरस स्वप्रकाश चैतन्य मात्रको तत्व विद् गण कहते हैं कि—

"वदन्ति तत्तत्व विदस्तत्वं यज्ज्ञान मद्वयं ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानितिशब्द्यते ॥"

एक अद्वय ज्ञानही मूल तत्व है। इस मूल तत्वको कोई ब्रह्म कोई परमात्मा कोई भगवान कोई अदृश्य शक्तिके नामसे जताते हैं। भगवान व्यासदेवने अपने बनाये भागवतमें इस मूल तत्वको कृष्णके नामसे समझाया है। कृष्ण शब्दका अर्थ सच्चिदानन्द है। सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवान ही निखिल जीव जगतके स्वरूप हैं। हम सब जब विचार कर देखते हैं, तो इस तत्वको परोक्ष भावसे जान पाते हैं। दुःख कोई नहीं चाहता है। सब सुखके लिये लालायित हैं। "सुखंमे स्यात् दुःखं मा भूत"। मुझे सुख मिले। दुःख जिसमें न हो ऐसी चाह सबको है। सुख पानेकी आकांक्षा मानवके हृदयमें लगातार उठ रही है। हम सबोंके द्वारा जो कुछ भी कार्य होते हैं। जो कोई चिन्तायें आती हैं; उन सबोंका उद्देश्य है—आनन्दकी प्राप्ति। और भी देखिये मनुष्य मरना भी नहीं चाहता है। अमृतत्वको पाकर अमर जीवन बिताना चाहता है। **अमृतत्व**—पानेकी एक दुर्दमनीय इच्छा मानव हृदयमें दिन रात जगी हुई है। मनुष्य किसीके अधीन भी नहीं रहना चाहता है। वह **स्वतन्त्रता** चाहता है। सभी विषयोंको जानने की भी अभिलाषा मानव हृदयमें सर्वदा वर्त्तमान रहती है। मनुष्य **सर्वज्ञ** होना चाहता है। सबोंपर अधिकार जमानेकी **प्रभुत्व**-वासना

मनुष्यकी स्वाभाविक रुचि है। मानव हृदयको टटोलकर देखनेसे देखा जाता है कि मनुष्य शक्ति भी चाहता है। वह सर्व शक्तिमान होनेको सर्वदा अभिलाषी है। इससे पता चलता है कि आनन्द अमृतत्व, स्वतन्त्रता, सर्वज्ञत्व, प्रभुत्व सर्वशक्तिमत्व ये छः हों गुण पानेकी दुर्दमनीय अभिलाषा मानवके हृदयमें सर्वदा जगी हुई है। पूर्वोक्त छहों आकांक्षाओंका अन्त ईश्वरके साक्षात् कारसे हो जाता है। कारण है कि ईश्वर सर्वज्ञ, सर्ववित्, सर्व शक्तिमान, सर्वान्तर्यामी सबोंका स्वामी एवं मायाधीश हैं। परम आनन्द स्वरूप और अमृत स्वरूप हैं। ये परम आनन्द स्वरूप अमृत स्वरूप श्रीकृष्ण भगवान तरङ्गोंमें जलकी तरह, सोनेके हारोंमें सोनेकी तरह, जीव जगतके अन्दर, बाहर, नीचे, ऊपर, अंणु-अणुके समस्तको व्यापे हुए, सर्वदा विराजमान हैं। वे हम सबोंके अन्दरमें विराजमान रह कर हम सबोंको अपनी ओर आकर्षित करते हुए; कह रहे हैं—"उत्तिष्ठत् जाग्रत्, प्राप्य वरान् निवोधत्" और कबतक अज्ञानकी नींदमें सोये रहोगे? उठो? जागो? तत्व दर्शियोंके पास जाकर निश्चित रूपसे जानो कि तुम कौन हो? तुम्हारा क्या स्वरूप है। मैंही तुम्हारा स्वरूप हूं। अज्ञानसे तुमने स्वस्वरूपको भुलाकर मायाके चक्करमें पड़कर देहादिके आत्माभिमानमें "मैं कर्ता हूं" "मैं भोक्ता" हूं मैं "सुखी" हूं और मैं "दुःखी हूं" इस प्रकार अपनेको छोटा समझ कर, जन्म मरनके वसमें होकर संसार रूप सागरमें डूबे हुए हो। मैं जो तुम्हारा स्वरूप हूं, मुझसे मिलो एवं अजर, अमर, अभय, अशोक होकर परमानन्दमें अवस्थान करते हुए संतोष पाओ।

ये सच्चिदानन्द भगवान श्रीकृष्ण आश्रय तत्व होते हैं। जीव कौनसे उपायोंका अवलम्बन कर भगवान श्रीकृष्णको आत्म रूपमें साक्षात पाते हुए; इसी जन्ममें तथा इस देहमें ही कृत कृत्य हो सकता है, इसे भगवान व्यास देवने श्री मद्भागवतमें अत्यन्त सुन्दर ढंगसे विवेचन कर बताया है। भगवानके उद्देश्यसे, निष्काम भावना से, किये गये कर्मके अनुष्ठानोंको ज्ञान एवं भक्तिके सभी विषयोंको भागवतमें समझाया गया है। सम्पूर्ण भागवतमें दशमस्कन्ध श्रेष्ठ है। दशमस्कन्धमें रास पञ्चाध्याय सबसे उत्तम है। भगवान रस स्वरूप हैं। समस्त जीव जगत इस रससे रसित होकर रह रहा है। रस स्वरूप भगवानकी रासलीला प्रत्येक जीवमें क्षण-क्षण हो रही है। भगवानकी इस मधुर रासलीलाको देखनेका एकमात्र उपाय है; भगवानकी शरणागति और अनन्या-भक्ति। कैसे भगवानका शरणागत होकर एक निष्ठभक्तिके द्वारा साधक भगवानकी रासलीलाको अपने हृदयमें साक्षातकार कर परमानन्दमें तल्लीन हो सकता है, इसे आगे चलकर रासलीलाके प्रकरणोंमें अपनी शक्तिके अनुसार दिखनेकी चेष्टा करूंगा। मैंने कई तरहसे कई दृष्टियोंसे रस स्वरूप भगवान की लीलाके रस माधुर्यको पाकर तृप्ति पाई है। इसीसे सभीको एक ही में न रख कर कई भागोंमें अलग अलग रूपसे इस ग्रन्थमें दिखाऊंगा। व्यास देवकी अमृतमयी वाणियों द्वारा ही सभी सहृदयगण भगवत्प्रेमियोंको सादर पुकार कर कहता हूँ—

निगम कल्पतरोर्गलितं फलम्,
शुक मुखात् अमृत द्रव संयुतम्।

पिबत भाग वतं रस मालयम्,
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ।।

यह भागवत कल्प वृक्षके समान वेदका पका हुआ फल है। दूसरे फलोंमें गुठलियां और रेसे रहते हैं, किन्तु कल्पतरू वेदके भागवतरूप फलमें गुठली और रेसे नहीं है। यह सुपक्क फल है। यह फल पूराका पूरा रससे ही भरा है। फिर शुकदेवजीके मुखसे उच्चारित होनेपर यह अमृतमय हो गया है। इस पृथ्विपर रहनेवाले प्रेमियो! नित्य निरन्तर भगवानकी भावनासे भरे भगवद्भक्तगण! आप सब वेदरूप कल्प वृक्षका केवल भगवत् रसमें भरे अमृतमय इस भागवत् रूप फलको ही बारवार मरनकाल तक पान करते रहें। इस फलमें गुठली नहीं है। रेसा नहीं है। केवल रस है। इससे आप वारवार इसे पीनेमें समर्थ होईयेगा ?

—स्वामी विश्वेश्वरानन्द गिरि।

रास-लीला

(रासलीलाका आध्यात्मिक रहस्य और उसकी व्याख्या)

भगवान् व्यासदेवने देवर्षि नारदके उपदेशानुसार समाधिस्थ होकर परम आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण भगवान एवं उनकी मायाको देखा था। उन्होंने स्पष्ट उपलब्धि किया था कि जीव स्वरूपतः नित्य शुद्ध, बुद्ध और मुक्त होकर भी मायाके वस अपनेको छोटा समझकर संसार सागरमें निमग्न है। श्रीकृष्ण भगवानका दो रूप है। एक निर्गुण, निर्विशेष निरुपाधिक है। मायातीत सच्चिदानन्दका दूसरा रूप है सर्वज्ञ, सर्ववित् सर्वशक्तिमान परमानन्द बोध स्वरूप सोपाधिक मायाधीश रूप। रसस्वरूप भगवान श्रीकृष्णकी उपाधि माया है। यह माया निस्तत्वा है अर्थात् पारमार्थिक सत्ताशून्या है। इसकी अपनी वास्तविक कोई सत्ता नहीं है। रस स्वरूप सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवानकी सत्ता और प्रकाशमें यह सत्ता पाकर प्रकाश पाती है। यह माया सत्व, रज, तम, गुणवाली है। यह पञ्च

भूत और पञ्च भौतिक पदार्थके रूपमें परिणाम प्राप्त होती रहती है। जीवके स्थूल देह प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि चित्त, अहंकार सभी माया के कार्य हैं। माया एवं मायाके सभी कार्योंके भीतर और बाहरमें परिपूर्ण होकर रस स्वरूप श्री कृष्ण भगवान विराज रहे हैं। मनुष्यके स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर श्रीकृष्णके आनन्द रसमें सर्वदा रसित हैं। मायाका सत्वगुण प्रकाशशील है। स्वच्छ है। रजोगुण चञ्चल है। तमोगुण आवरण स्वभावका है। अन्तःकरण सत्व प्रधान है। मनुष्यका यह स्थूल देह तम प्रधान है। मनुष्यका अन्तःकरण सत्व प्रधान होनेसे उसमें चैतन्य विशेष रूपसे अभिव्यक्त हुआ करता है।

अन्तःकरण उस समय चैतन्यकी उपाधि होता है। यह अन्तःकरण रूप उपाधि विशिष्ट चैतन्य ही जीवके नामसे विख्यात हुआ करता है। माया जीवके स्वरूप श्रीकृष्णको आवृतकर अन्तःकरणमें विक्षेप उत्पन्न करती है। अज्ञानके कारण अन्तःकरण रूप उपाधिके साथ एकता पाकर जीव चैतन्य, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन्द्रियां, प्राण और स्थूल देहमें आत्माभिमान कर अपनेको कर्त्ता, भोक्ता, सुखी, दुःखी, एवं जन्म-मृत्युके अधीन समझते हुए भी उसके स्वरूपके ज्ञान को एकदम नहीं भुला पाता है। हमने तो पहले ही विचारकर देखा है कि मनुष्यके हृदयमें आनन्द, अमृत्व, स्वातन्त्र, सर्वज्ञत्व, प्रभुत्व एवं सर्वशक्तिमत्वकी अदम्य अभिलाषा बराबर उठा करती है। मैं कौन हूँ? मेरा वास्तविक रूप क्या है? इसे विचारकर देखना प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है। यह जो हम सब "मैं" "मैं" किया करते हैं,

इसे विचार कर देखना चाहिये कि मैं कौन हूं ? जो मेरा है, वह मैं नहीं हूं। मेरी स्त्री, मेरे स्वामी, मेरा पुत्र, मेरी लड़की, मेरा घर, मेरे रुपये, तथा मेरे वस्त्र हैं, उनमें से तो एक भी मैं नहीं हूं। इसी प्रकार मेरा स्थूल देह, मेरा प्राण, मेरी इन्द्रियां, मेरा मन, मेरी बुद्धि, मेरा चित्त एवं मेरा अहंकार है। मैं परन्तु देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकारसे अलग हूं। फिर मैं हूं कौन ? अच्छा इसे फिर विचारें—जो द्रष्टा है वह दृश्य कभी भी नहीं हो सकता है। जैसे जो व्यक्ति एक घड़ा देख रहा है, वह घड़ा कभी भी नहीं हो सकता है। घड़ासे वह व्यक्ति अलग है। उसी प्रकार मैं इस स्थूल देहको देख रहा हूं। स्थूल देह मेरा दृश्य है। मैं स्थूल देहका द्रष्टा हूं। इससे मैं स्थूल देहसे अलग हूं। मेरा प्राण बड़ा धड़फड़ा रहा है। इस प्राणका द्रष्टा मैं हुआ। मेरी इन्द्रियां दुर्बल हो पड़ी हैं। इन्द्रियोंका भी द्रष्टा मैं हुआ। मेरा मन बड़ा चञ्चल हो रहा है। मनका द्रष्टा मैं हुआ। मेरी बुद्धि मानो काम नहीं कर रही है। बुद्धिका भी द्रष्टा मैं ही हुआ। मेरा चित्त बड़ा मलिन हो गया है। चित्तका भी द्रष्टा मैं ही हुआ। मुझमें अहंकार बड़ा बढ़ गया है। अहंकारका भी द्रष्टा मैं ही हूं। इससे मैं देख रहा हूं कि मैं देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण, चित्त और अहंकारोंका द्रष्टा हूं। मैं इनमें से प्रत्येकोंसे एवं इनके सभी स्थूल और सूक्ष्म देहोंसे अलग हूं। मैं अबूझ हूं। कुछ भी नहीं जानता हूं। इस तरह की बातें जब मैं बोलता हूं, तब 'कुछ भी नहीं जानता हूं' इस अज्ञानका अर्थात् अज्ञानरूप कारण देहका भी मैं ही द्रष्टा हुआ। इन स्थूल-सूक्ष्म-कारण देहोंका

द्रष्टा मैं हूं। तब मैं कौन हूं ? फिर एक बार सोचकर समझें। मेरे जितने भी काम हैं, जो भी ज्ञान हैं, जो भी चिन्तायें हैं, वे सब तीन अवस्थाओंके बीचमें हैं। ये तीन अवस्थायें—"जाग्रत अवस्था, स्वप्नावस्था एवं सुषुप्तिकी अवस्थायें हैं। जाग्रत अवस्थामें मैं अपनेको स्थूल देह समझ रहा हूं। जान रहा हूं मैं अमरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय हूं। मैं ब्राह्मण हूं। बूढ़ा हूं। रोगी हूं। कल्याणी मेरी स्त्री है। राम और कृष्ण मेरे दो लड़के हैं। जब मैं सोते हुए स्वप्न देखता हूं, तब स्वप्नमें मैं अपने को मनोमय सूक्ष्म देह समझता हूं। जाग्रत अवस्थामें मैं ब्राह्मण अमरेन्द्रनाथ हूं, किन्तु स्वप्नावस्था में हो सकता है कि मैं शङ्कर मित्र हो गया हूं। उस समय मैं अपनेको नयी दशामें देख रहा हूं। फिर जब सुषुप्तिकी अवस्था में नींद लेता हूं; तब मैं न तो अमरेन्द्रनाथ हूं और न तो शंकर मित्र ही हूं। न ब्राह्मण ही हूं। न क्षत्रिय हूं। न वैश्य हूं। न शूद्र हूं। न ब्रह्मचारी हूं। न गृहस्थ हूं। न वानप्रस्थ हूं। न संन्यासी हूं। न मैं हिन्दू हूं। न मुसलमान हूं। न इसाई हूं। न स्त्री हूं। न पुरुष हूं। न मनुष्य हूं। पता नहीं कौन सा एक अज्ञान आकर मुझे घेर लेता है। स्थूल देहका अभिमानी मैं स्वप्न और सुषुप्तिकी अवस्थामें नहीं रहता हूं। स्वप्नकी अवस्थामें सूक्ष्म-देहका अभिमानी मैं जाग्रत एवं सुषुप्ति की अवस्था में नहीं रहता हूं। फिर सुषुप्तिकी अवस्थामें कारण देहका अभिमानी मैं जाग्रत और स्वप्नावस्थामें नहीं रहता हूं। यदि मैं स्थूल देह होता तो सभी अवस्थाओंमें एक रूप रहता। किन्तु ऐसा तो नहीं रहता हूं ? देहाभिमानी

मुझमें सभी अवस्थाओंमें व्यतिक्रम देखा जाता है। इससे मैं इन तीनों देहोंसे निश्चय ही अलग हूं। तो फिर मैं क्या हूं? मैं जगकर कहता हूं कि मै अभी जाग रहा हूं। उसी मैंने स्वप्न देखा था और वही मै सुप्त था। अतएव देख रहा हूं "एक मैं क्या जाग्रत क्या स्वप्न, क्या सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंमें एकसा ही हूं, और एक मैं तीनों अवस्थाओंमें बदल जाता हूं। फिर जगनेपर मुझे स्मरण होता है कि मैं इतनो देर तक सुखसे सो रहा था। कुछ भी नहीं जान सका। इस अज्ञानकी स्मृति हमें होती है। जो पदार्थ एकबार प्रत्यक्ष अनुभूत हुआ है, उसीके ज्ञानको स्मरण या स्मृति-ज्ञान कहा जाता है। सुषुप्तिकी अवस्थामें भी सुख एवं अज्ञान निश्चय ही अनुभूत हुआ था। ऐसा नहीं होनेसे उसकी स्मृति नहीं हो सकती है। अनुभूत होनेका अर्थ होता है, ज्ञानमें प्रकाशित होना। सुषुप्ति अवस्थामें सुख एवं अज्ञान एक स्वप्रकाश चैतन्यमें प्रकाशित हुआ था। वह "मैं' क्या जाग्रत, क्या स्वप्न, क्या सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंमें एक ही रूपमें रहता हूं। वही 'मैं' नित्य स्वप्रकाश चैतन्य स्वरूप आनन्द स्वरूप वस्तु है। यही तीनों देहोंका अभिमानी "मैं" का स्वरूप है। यही वास्तविक "मै" है। ऋषियोंने कहा है—

द्वासुपर्णा सयुजा सखाया,
समानं वृक्षं परिषस्व जाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति,
अनश्नन् अन्यः अभिचाकशीति ॥"

एक ही शरीर रूप वृक्षको आलिङ्गन कर एक ही स्वभावके दो सुन्दर पक्षी अर्थात् ईश्वर और जीव विराज रहे हैं। इन दोनों पक्षियोंमें एक पक्षी अर्थात् जीव शरीर रूप वृक्षका स्वादिष्ट और स्वाद हीन फलको खाता है। दूसरा पक्षी अर्थात् ईश्वर शरीर रूप वृक्षका फल नहीं खाकर केवल प्रकाशमान रहता है। नित्य, सत्स्वरूप, स्वप्रकाश चैतन्य स्वरूप, आनन्द स्वरूप ईश्वर—जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति, स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह-त्रयको सत्ता एवं स्फूर्त्ति देकर सर्वदा प्रकाश पा रहा है। यही वह "मैं" है, जो "मैं" जाग्रत आदि तीनों अवस्थाओंमें एक रूपसे नित्य, स्वप्रकाश और चैतन्य रूपसें विराज रहा है। फिर जो 'मैं' स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण-देहमें अभिमानी होकर जाग्रत स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्थाओंमें वदल जाता है। वही 'मैं' अज्ञानवस अपने स्वरूपको भुलाकर अन्तःकरण रूप उपाधिके साथ एक होकर; अन्तः करणके धर्म-कर्तृत्व, भोक्तृत्व, काम क्रोध आदिको अपने पर लाद कर; कर्ता, भोक्ता, काममय क्रोधमय, लोभमय आदि होकर; सुख दुःखको भोगता हुआ संसार सागरमें मग्न है। स्व-प्रकाश चैतन्य-स्वरूप ईश्वर अर्थात् परम आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण भगवान ही प्रत्येक जीवके स्वरूप हैं। वही वास्तविक "मैं" हैं। जीव अपने स्वरूप सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवानका जबतक साक्षात्कार नहीं कर पाता है ; तवतक वह भवसागरसे निकलनेमें समर्थ नहीं होता है। तीन तापोंसे क्लिष्ट जीव किस तरह सच्चिदानन्द भगवान श्रीकृष्णका साक्षात् पाकर इसी देहमें, इसी जन्ममें कृतकृत्य हो सकता है, इसे भगवान व्यास देवने भागवत्के दसवें

स्कन्धमें अच्छी तरह दिखाया है। इसे हम संक्षेपमें आगेके प्रबंधोंमें प्रकाश करनेकी यथासाध्य चेष्टा करेंगे।

मनुष्य जब शास्त्रके उपदेशसे एवं अपनी बुद्धिसे परीक्षा कर देखता है कि कर्मके द्वारा जो सब लोक प्राप्त किया जा सकता है, वे सब अनित्य हैं। तब उसके हृदयमें नित्य वस्तुके पानेकी एक अदम्य अभिलाषा उठती है। यही विवेक—वैराग्य वान शम दम आदि साधनोंसे युक्त परीक्षित हैं। साधक जब विनीत होकर श्रोत्रिय ब्रह्म-निष्ठ गुरुके पास जाता है। गुरू उसी प्रशान्त चित्त मुमुक्षु साधक (परीक्षित) को तब ब्रह्म-विद्याका उपदेश करते हैं। जिस ब्रह्मविद्या के द्वारा साधक अक्षर, परमात्मा, परमेश्वरको आत्म रूपमें साक्षात् प्राप्त कर जीवन सफल करनेमें समर्थ होता है। शास्त्र एवं गुरूके उपदेश, युक्ति एवं अनुभूति द्वारा विचार कर साधक इसी सिद्धान्त पर पहुंचता है कि आत्मा और 'मैं' का दो रूप है। आत्मा स्वरूप से निर्गुण, निर्विशेष, निरूपाधिक, नित्य, अपरिणामी, सच्चिदानन्द है। यही सच्चिदानन्द आत्मामें आवरण विक्षेपात्मिका सत्वरज तमोमयी माया या प्रकृति चाहे शक्ति चाहे अज्ञान या अविद्याकी असम्भावना एवं विपरीत भावनाको उठाती है। स्वरूपसे नित्य, शुद्ध, बुद्ध मुक्त स्वभाव आत्मा अपने सच्चिदानन्द स्वरूपको भूल जाता है। मायाका कार्य अन्तःकरण रूप उपाधिके साथ एकीभूत होकर अपनेको परिच्छिन्न जीव समझता है। कर्तृत्व, भोक्तृत्व, जन्म, मृत्यु, सुख, दुःख आदि अन्तःकरणके धर्म समूहोंको अपनेमें आरोपित कर मुग्ध मान होता है।

स्वरूप विषयक अज्ञान ही जब कर्तृत्व भोक्तृत्व, सुखित्व, दुःखित्व, प्रभृति सांसारित्विके कारण हैं। तब उस समय स्वरूप विषयक ज्ञान ही अज्ञानको हटाकर दुःखोंके आत्यन्तिक निवृत्तिका साधन करनेमें समर्थ होता है। यह स्वरूप विषयक ज्ञान ही परमानन्द प्राप्तिका एकमात्र कारण है। परम आनन्द स्वरूप आत्मतत्व की उपलब्धि करने पर आठ प्रकारके अन्तरङ्ग साधनोंका नितान्त प्रयोजन है। वे साधन सब निम्न हैं। नित्यानित्य विवेक, पर वैराग्य, शमदमादिछःसम्पत्तियां, मुमुक्षुत्व, श्रवण, मनन, निदिध्यासन एवं "अहं" ब्रह्मास्मि अथवा अहं-ग्रहकी उपासना। इनमें नित्यानित्य विवेक माया और उसके कार्य—विश्व प्रपञ्च और स्थूल सूक्ष्मादि तीनों देहों से आत्माका पृथक करण है। आत्मा सत्स्वरूप है। चैतन्य स्वरूप है। आनन्द स्वरूप है, माया किन्तु असत् जड़ और परिणामी है। असत्का अर्थ आकाश कुसुमकी तरह असत् नहीं है। आत्मा जिस प्रकार नित्य, अपरिणामी, सत् है। माया इस प्रकार सत् नहीं हैं। माया की प्रातीतिक सत्ता है, किन्तु पारमार्थिक सत्ता नहीं है। आत्माकी सत्तामें आत्माके प्रकाशमें माया सात्ता पाकर प्रतीत होती रहती है। अतएव सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा माया और मायाके कार्य—विश्व प्रपंच और देहादि से सम्पूर्ण विलक्षण है। सम्पूर्ण पृथक है। इसी प्रकार विवेकसे उत्पन्न ब्रह्म लोकादिमें जो तुच्छ बुद्धि होती है, वही वैराग्य है। अन्तरिन्द्रियों एवं बहिरिन्द्रियोंके संयमही शम एवं दम हैं। विषय भोगोंकी वितृष्णा ही उपरति है। धैर्य और चित्तका प्रशान्त भाव

तितिक्षा है। गुरु और शास्त्र वाक्यों पर अटल विश्वास श्रद्धा है। विषयोंसे पूरी तरह चित्तको हटाकर, सम्पूर्ण रुपसे अपने स्वरूपमें चित्तको लगा देना समाधान कहलाता है। स्वरूपमें नित्य अवस्थानका दृढ़ संकल्प ही मुमुक्षुत्व है। उपरोक्त साधनोंसे सम्पन्न होकर श्रवण और मनन या विचार करते रहनेसे प्रमाण सम्बन्धमें असम्भावना दूर हो जाती है। उस समय दृढ़ निश्चय हो जाता है कि यही सच्चिदानन्द प्रमाण सिद्ध आत्म-तत्व है। इस आत्म-तत्वमें असम्भावनाका स्थान नहीं है। इसके बाद श्रद्धाके साथ नित्य निरन्तर आत्म स्वरूपका—ध्यान रूप निदिध्यासन करते रहने पर परमानन्दकी थोड़ी थोड़ी अनुभूति होती रहती है। उस समय प्रमाण सिद्ध प्रमेय रूप आत्माके सम्बन्धमें असम्भावना चली जाती है। उसके बाद "अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात् मैं सभी प्रकार परिच्छेद रहित, सभी प्रकारके भेदोंसे वर्जित, अखण्डैकरस, साक्षी, सच्चिदानन्द स्वरूप हूं, इसी रूपमें नित्य निरन्तर साक्षी चैतन्यका ध्यान करते करते आत्म सम्बन्धीय विरोधी भावना हट जाती है। वायुकी झोकोंसे कम्पन हीन दीप शिखाकी नाईं स्वरूपमें ठहराव हो जाती है। साक्षी इस शब्दके दो भाव हैं। एक है निर्लेप अर्थात् असङ्गता और दूसरा है अव्यवहित प्रकाशकत्व।

हम सबको जो कुछ भी ज्ञान होता है, वह सब ज्ञान नाम रूप की विशेषता लेकर होता है। इससे हम जिसका ज्ञान करते हैं, उस पदार्थका वास्तविक रूप नहीं जान पाते हैं। इसमें कारण यह है

कि ज्ञेय पदार्थके वास्तविक स्वरूपको नाम रूपका एक पर्दा ढक कर रखती है। हम सबोंको उसे नहीं जानने दिया जाता है। फिर जाननेवाला जो 'मैं' है, वह मेरे स्वरूपको भी नहीं जानने देता है। मैं राम हूं, इस अहंकारका पर्दा देकर मेरे स्वरूपको ढक देता है। इसलिये हम ज्ञाता और ज्ञेयके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान पाते हैं। साक्षी चैतन्यमें किन्तु नाम रूपका कोई पर्दा नहीं है। भूत, भविष्य वर्तमानका कोई काल, कोई देश, कोई भाव, कोई अभाव, कोई चिन्ता, कोई कार्य, कोई नामरूप भी इस साक्षी चैतन्यको नहीं ढक सकता है। चित्तमें किसी प्रकारका संकल्प और विकल्प उठने पर, उस संकल्प और विकल्पोंके अन्दर तथा वाहर अणु अणु सब परिपूर्ण कर स्व प्रकाश साक्षी चैतन्य स्वरूप 'मैं' निर्लिप्त होकर प्रकाश मान है। वाहर भी प्रत्येक नामोंमें प्रत्येक रूपोंमें निर्लिप्त होकर साक्षी चैतन्य "मैं" सत्स्वरूपमें, चैतन्य रूपमें नित्य प्रकाशमान है। इस प्रकार अन्दर वाहर साक्षी चैतन्यका नित्य निरन्तर ध्यान करनेसे अज्ञानका नाश हो जाता है। उस समय अपने स्वरूपमें अवस्थान हो जाता है।

पूर्वोक्त साधना रसस्वरूप श्रीकृष्ण भगवानकी ही रास लीला है। अज्ञानके वस गलेमें पहरे सोनेके हारको ढूंढ़नेकी तरह सर्वदा प्राप्त श्रीकृष्ण भगवान मानों मेरे पास नहीं हैं। इसी प्रकार उसे मन्दिरोंमें पहाड़ोंकी गुफाओंमें, वेद और पुराणोंमें हम ढूंढ़ते फिरते हैं। ये भी उसी रस स्वरूप श्रीकृष्ण भगवानकी ही लीला है। इसलिये दृढ़तासे महर्षियोंने ने कहा है—

"नाय मात्मा प्रवचनेन लभ्यः।
न मेधया न बहुना श्रुतेन॥
यमैवैषः वृणुते तेन लभ्यः।
तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम्॥

वेद वेदान्तोंके अध्ययन एवं अध्यापनाओंके द्वारा मेधा द्वारा, बहुतसे आचार्योंके पाससे अनेकोंवार आत्म विषयक उपदेश-श्रवण द्वारा, इस आत्माको नहीं पाया जा सकता है। जिस पर ये आत्मा कृपा करते हैं, जो सब कुछ छोड़छाड़ कर केवल आत्माभिमुखी होकर निरन्तर अपने आपके स्वरूपका ध्यान करते हैं, उसीके पास आत्मा अपनें स्वरूपको प्रकट किया करते हैं।

उपदेश, युक्ति, तर्क और विचारों द्वारा परमार्थ सत्य वस्तुओंके सम्बन्धमें हम सबोंको परोक्ष ज्ञान होता है, किन्तु यह परोक्षज्ञान "मैं देह हूं" इस अपरोक्ष भ्रमको, इस प्रत्यक्ष भ्रान्त ज्ञानको नष्ट नहीं कर पाता है। देहमें आत्माभिमान स्वरूप प्रत्यक्ष भ्रम तभी दूर होता है, जब भगवत्कृपाको पाकर श्रद्धा और अनन्याभक्तिके साथ नित्य निरन्तर अभेदमें भगवानके ध्यान द्वारा उसे आत्म रूपसे साक्षात् करनेमें साधक समर्थ होता है। तर्क और युक्तियोंके द्वारा दूसरेके मतोंका खण्डन और अपने मतोंका समर्थन करते करते हृदय सूख जाता है। अहंकार बढ़ जाता है। मैं आचार्य हूं। मै मण्डलेश्वर हूं। मै शास्त्री हूं। मैं महामहोपाध्याय हूं। मैं बड़ा विद्वान हूं। वेद वेदान्तोंमें मेरे जाननेको कुछ भी नहीं है। वेद वेदान्तोंको तो मैंने घोंट

२

कर पी लिया है। इस प्रकारका अहंकार अभिमान हृदयमें उठ कर, मनुष्यको पारमार्थिक सच्ची वस्तुओंकी अपरोक्षानुभूतिसे दूर ले जाता है। ऐसे विद्वानोंको वेद वाक्योंका केवल पद और वाक्योंके अर्थोंका ज्ञान होता है। पारमार्थिक सत्य वस्तुओंकी अपरोक्षानुभूति नहीं होती है। इसीलिये भगवान शङ्कराचार्यने कहा है :—

"वाग्वैखरी शब्दझरी, शास्त्र व्याख्यान कौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वत् भुक्तये न तु मुक्तये ॥"

ऐसे विद्वानगण केवल शास्त्रकी व्याख्या करनेकी कला जान पाते हैं। इस शास्त्र व्याख्याकी कला उनके पेट भरनेमें सहायक होती है, किन्तु मोक्षके लिये यह बाधक हो पड़ती है। जिन्होंने "ब्रह्मात्मैक्य"का ज्ञान पाया है। उनके भी हृदय यदि भक्तिसे हीन हैं, तो उनके ज्ञान पुष्ट नहीं हो पाते हैं। इसीसे देवर्षि नारदने वेदज्ञ और तत्वदर्शी व्यास देवको कहा था:—

"नैष्कर्म मप्यच्युत भाव वर्जितम्।
नशोभते ज्ञान मलं निरञ्जनम् ॥"

जिसमें लेशमात्र भी अज्ञान नहीं है। वह निर्मल ब्रह्म ज्ञान भी भगवद्भक्तिसे रहित होनेपर शोभा नहीं पाता है। भगवानमें शरणागति एवं अनन्या भक्ति ही भगवानके साक्षात्कारका प्रधान कारण है। व्यास देवने और भी कहा है।

"भक्तिःपरेशानुभवो विरक्तिः।
अन्यत्रचैषः त्रिकः एक कालः ॥

प्रपद्य मानस्य यथाऽश्नतः स्युः ।
तुष्टिः पुष्टिः क्षुधो ऽपायोऽनुघासम् ॥"

शरणागत भक्तोंकी भक्ति परमेश्वरकी अनुभूति एवं परमेश्वरसे दूसरे विषयोंका वैराग्य ये तीनों सट-सट कर रहते हैं। जिस प्रकार खाने वालोंको प्रत्येक कौरसे तुष्टिपुष्टि और भूखकी शान्ति मिलती है। मनुष्यका अन्तःकरण सत्व, रज और तमोमयी मायाका कार्य है; अतएव अन्तःकरण भी सत्वरज और तमोमय है। सात्विक अन्तःकरणकी विशेषता वाले साधक भगवानका साक्षात्कार पानेमें समर्थ होते हैं, किन्तु उनके साधन मार्गके प्रबल शत्रु राजस और तामसके अन्तःकरण होते हैं। मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार इन चारोंकी समष्टियां ही अन्तकरण है। इस अन्तःकरणको कभी मन, कभी बुद्धि, कभी चित, कभी अहंकारके नामोंसे कहा जाता है। व्यासदेवने कहा है।

"यर्ह्यब्ज नाभ चरणैषणयोरु भक्त्या ।
चेतो मलानि विधमेत् गुणकर्म जानि ॥
तस्मिन् विशुद्ध उपलभ्यत् आत्मतत्वम् ।
साक्षात् यथा मलदृशः सवितृप्रकाशः ॥"

"यर्हिका" अर्थ जब है। "अब्जनाभ चरणैषणया" का अर्थ है जिस पद्म नाभका आश्रय कर यह जीव जगतरूप कमल खिल रहा है। वेही सम्पूर्ण विश्वके आश्रय, सभी जगत प्रपञ्चोंके अधिष्ठान सच्चिदानन्द रूप भगवान हैं। उनका चरण अथवा पद ब्रह्मपद है,

उस ब्रह्मपदको पानेकी 'एषणया' वासनासे अर्थात् ब्रह्मपद पानेकी अदम्य अभिलाषासे, 'उरु भक्त्या, अर्थात् एक निष्ठ भक्तिके साथ "चेतो मलानि' अर्थात् चित्तकी राजस तामस मलिनताको, 'गुण कर्म जानि' अर्थात् सत्व, रज और तमोगुणों द्वारा संचालित कर्म समूहों से उत्पन्न, 'विधमेत्' अर्थात् सम्पूर्ण रूपसे दूर कर देता है। तस्मिन् = उसी, विशुद्धे = विशुद्ध चितमें, आत्मतत्वं = आत्म स्वरूप सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवान, साक्षात् = प्रतिबंध रहित भावमें, उप लभ्यत् = प्राप्त होते हैं। यथा = जैसे, अमल दृशः = निर्मल आंख वाले पुरुषको सवितृ = प्रकाशः सूर्यको ज्योति साफ दीखती है।

साधक जब निखिल विश्वके आश्रय सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवानका साक्षात्कार करनेकी दुर्दमनीय अभिलाषासे एवं एक निष्ठ भक्तिसे और सत्वरज तथा तमो गुणोंके संचालित कर्म समूहोंसे उत्पन्न चित्तकी विषय-वासना रूप मयलाको पूरी तरह हटा कर चित्तको पूर्ण रूपसे निर्मल करते हैं; तब उसी विशुद्ध चित्तमें अपने स्वरूप सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवानको आत्म रूपमें साक्षात् उपलब्धि करनेमें समर्थ होते हैं। जैसा निर्मल आंखों वाले व्यक्ति बिना किसी रोक टोकके सूर्यकी ज्योतिको ठीक ठीक देख पाते हैं। उसी प्रकार साधक आत्माकी उपलब्धि करते हैं।

सत्वगुण प्रधान चित्त विवेक और वैराग्यकी प्रबलतासे भगवान की ओर अग्रसर होता है। राजस और नामस चित्त भोग एवं ऐश्वर्य की प्रबलतासे संसारकी ओर दौड़ पड़ता है। राजस तामस चित्त या अहंकार एवं उसी चित्त या मनके राजस तामसकी सारी

वृत्तियां और इस राजस तामसकी सारी इन्द्रिय वृत्तियां असुर कहाती हैं। इसे दैत्य भी कहा जाता है। असुर शब्दकी व्युत्पत्ति है। "असुषु रमतेयः स असुरः" जो इन्द्रिय वृत्तियोंके समूहोंमें रमण करें, अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा विषयके सुखोंमें मत्त हो वही असुर है।

सत्वगुण प्रधान चित्त, एवं सात्विक मनोवृत्तियां और सात्विक इन्द्रिय वृत्तियां देवता कही जाती हैं। मनुष्यके हृदयमें ये देवासुर संग्राम अहरह हो रहा है। इस आध्यात्मिक तत्वोंको व्यासदेवने भागवतके दसम स्कन्यमें नाम रूप देकर अच्छी निपुणतासे प्रकट किया है। विवेक वैराग्यवान तत्व जिज्ञासु साधक ही परीक्षित है। वही गुरुके पास जाकर तत्व विषयक उपदेशोंको सुन रहा है। मथुरा नगरका नाम पहले मधुरा था। जिस नगरमें मधु है, वही मधुरापुर है। मधुका अर्थ आनन्द है, अर्थात् सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवान है। बृहदारण्यक उपनिषद्के मधु ब्राह्मण प्रकरणमें ऋषि कहते हैं—

"अयमात्मा सर्वेषां भुतानांमधु.........यः
अयमात्मा, इदं अमृतं इदं ब्रह्म इदं सर्वम्।

यह आत्मा ही मधु है। यह आत्मा ही अमृत है। यह आत्मा ही ब्रह्म है। यह आत्मा ही सब कुछ है। प्रत्येक जीव शरीरके अन्दर और बाहर को परिपूर्ण कर यह मधु है। यहीं रसस्वरूप श्रीकृष्ण भगवान विराज रहे हैं। इसीलिये जीव शरीर ही मथुरा पुरीया मधुपुरी कहाता है। भगवन्मुखी सात्विक चित्तवृत्ति समूह गोप है। इसी प्रकार भगवन्मुखी इन्द्रिय वृत्तियोंके समूह गोपियां

हैं। 'गो' का अर्थ चैतन्य ज्योति है। यह चैतन्य ज्योतिकी रक्षा करती है। पालन करती है। परिपुष्ट करती है। इसीसे भगवन्मुखी सात्विक चित्त वृत्तियां एवं इन्द्रिय वृत्ति समूहोंको गोप और गोपीका नाम दिया गया है। श्रद्धा और भक्तिके साथ मनको मस्तकके ऊपर भागमें समाहित कर अन्य सारी चिन्ताओंको छोड़कर भगवानमें शरणागत होकर, नित्य निरन्तर ध्यान करते रहनेसे यह ज्योति या वैदिक अग्नि या कुण्डलनी शक्ति प्रकाश पाती है। यही चैतन्य ज्योति साधकके मूलाधारसे उठकर सम्पूर्ण शरीरको ज्योतिमय कर देती है। तब साधकके परिच्छिन्नत्वको हटाकर उसे अनुभव करा देती है कि वह ज्योतिर्मय आकाशवत सर्वव्यापी है। साधनाकी इस अवस्थामें साधक अपने मानसिक चक्षुओंसे स्पष्ट देख पाते हैं कि हजारों ज्योतिर्मय गौवें उनकी चारों ओर विचर रही हैं। ऋग्वेदमें महर्षिने इन ज्योतिर्मय गौवोंको लक्ष्यकर कहा है—ये सब ज्योतिर्मय गौवें अवध्य हैं। ये ज्योतिर्मय गौवें 'अध्न्यः' हैं अर्थात् मारने के अयोग्य हैं। ये सब शरीरके अन्दरके उद्बोधित चैतन्य ज्योतिके परिपोषक हैं। विशुद्ध हुए चित्तका भगवन्मुखी सात्विक अहंकार वसुदेव है। वसुका अर्थ होता है धन। देवका अर्थ होता है स्वप्रकाश चैतन्यस्वरूप सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवान। परम आनन्द स्वरूप अमृत स्वरूप श्रीकृष्ण भगवान ही जिनका एकमात्र धन है, वही 'वसुदेव' हैं। व्यासदेवने श्रीमद्भागवतमें स्वयं अपने मुखसे कहा है कि "विशुद्धचित्तं वसुदेव संज्ञितम्"। विशुद्धचित्तका नाम ही वसुदेव है। विशुद्ध चित्तकी भगवन्मुखी अविचला वृत्ति ही देवकी है। राजस तामस

अन्तःकरण उग्रसेन हैं। राजस तामसके अन्तः करणकी जो विशेष वृत्तियां देहमें आत्माभिमान करती हैं, वेही अहंकार हैं। देहका वही आत्माभिमानी राजस तामस अहंकार कंस है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्षा, द्वेष, कुटिलता, निष्ठुरता, दर्प, दम्भ, और प्रभुत्वकी आकांक्षा प्रभृति कंसके अनुचर हैं। पूतना काम है। शकटासुर मोह है। तृणावर्तासुर क्रोध है। ईर्षा, दम्भ, और कुटिलताकी मूर्तिमान प्रतिमा कालीय नाग है। बकासुर लोभ है। अघासुर पाप है। दम्भ और ईर्षाकी प्रतिमूर्ति रासभासुर है। इस प्रकार राजस तामस अन्तःकरणकी पाशविक वृत्तियोंको भगवान व्यासदेव ने एक एक नाम रूप देकर चित्रित कर प्रदर्शन किया है।

कंस अपने पिता उग्रसेनकी अवज्ञाकर मधुपुरीके सिंहासन पर आधिकार जमाता हुआ स्वयं राजा बन बैठा। उसी समयसे मधुपुरी मथुरा कही जाने लगी। मथुरा शब्दका अर्थ है "मथ्यते अत्याचारैः उत्पीडनैः यासा मथुरा।" जो अत्याचार एवं उत्पीडनोंसे मथित हो वह मथुरा है। देहके अन्दरके आत्माभिमानी राजस तामस अहंकार रूप कंसके प्रबल होने पर मनुष्य काम क्रोध लोभादिके द्वारा अभिभूत होकर विषय भोगोंमें मत्त हो पड़ता है। किन्तु विषय भोगोंसे वह तृप्त नहीं हो पाता है। तब वह मरा मरा सा होकर रहता है। साधककी भगवन्मुखी सात्विक चित्तवृत्ति समूहें राजस तामस अहंकार रूप कंसके अत्याचारोंसे उत्पीड़ित हो उठती हैं। साधक निरुपाय होकर विह्वल प्राणसे भगवानका शरण लेकर

आंसुओंकी वर्षा करता है। व्यासदेवने भगवत्में कहा है, कंसके अर्थात् असुर प्रवृत्ति वाले राजाओंके अत्याचार और उत्पीडनोंको पृथ्वी जब सहन नहीं कर सकी, तब गो का रूप धारण कर रोती हुई; ब्रह्माके पास पहुंची। उनसे अपने दुःखोंको बिलखती हुई जतायी। ब्रह्माजीने देवगण और रूद्रोंके साथ क्षीरोद सागरके तट पर जाकर समाधि लगाई। समाधि टूटने पर ब्रह्माजीने देवगणोंसे कहा कि हमने भगवानका आदेश पाया है। "भगवान शीघ्रही देवकीके गर्भमें अवतीर्ण होकर कंस प्रभृति उत्पीड़क राजाओंका विनाश करेंगे।"

ब्रह्मा मनका अधिष्ठातृ देवता है। अहंकारकी अधिष्ठातृ देवता रूद्र है। देवगण इन्द्रिय समूहोंकी अधिष्ठातृ देवता हैं। पृथिवी शरीरका प्रतीक है। इनका सारांश यह है कि मनुष्य जब विषय भोगसे तृप्ति नहीं पाता है, जब काम, क्रोध, लोभ और मोहादिकोंके उत्पीड़नोंसे वह उत्तप्त होकर शान्ति नहीं पाता है, तब वह कातर प्राणसे गो मुखी होकर अर्थात् वेद प्रतिपाद्य परमात्मा परमेश्वर-मुखी होकर मन, इन्द्रियाँ एवं अहंकारको भगवन्मुखी करता है। इस प्रकार आकुल हृदयसे कातर प्राणसे प्रार्थना करते रहनेसे भगवानके पाससे आदेश मिलता है। भगवान असीम करूणामय हैं। उनकी आश्वासन वाणीको सुनकर अनुतप्त हृदयका मनुष्य भगवानका शरणागत होकर उनके ध्यान करनेमें लग पड़ता है। निरन्तर भगवानका ध्यान करते करते साधकका चित्त विशुद्ध होने लगता है। उसी विशुद्ध चित्तमें अचला भगवद्भक्ति

का उदय होता है। उसी समय वसुदेवजीके साथ देवकीजीका विवाह सुसम्पन्न होने लगता है। उसी समय राजस और तामस अहंकार विचारने लगता है कि अपने को यदि नित्य और निरन्तर भगवानके ही ध्यानमें समय विताना पड़ा तो फिर अपने लिये संसारके विषयोंका सुख भोग करना असम्भव हो जायगा। तब वह भक्तिसे पवित्र विशुद्ध चित्तकी भगवन्मुखी सात्विक बृत्तिको नष्ट करने पर तुल पड़ता है। कंसके देवकी वधकी चेष्टाका यही तात्पर्य है। नारदजीसे कंस सुनता है कि भगवान देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न होकर उसे मार डालेंगे।

नारद शब्दका अर्थ है "नारं परमात्म तत्वं ददाति उपदिशति यः स नारदः।" परमात्म विषयक तत्वज्ञानका जो उपदेश करता है, वह नारद है। पृथ्वी, जल, अग्नि- वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहं-कार ये आठ भगवानकी अपरा प्रकृतिके परिणाम विशेष हैं। इनमें अहंकार आठवां है। यह अहंकार पूर्ण रूपसे विना हटे भगवानका साक्षात् नहीं पाया जा सकता है। इसी कारणसे कायामें आत्मा-भिमानी राजसी तथा तामसी अहंकार रूपी यह कंस इतना उद्वेग पाता है। जो साधक आकुल प्राणसे भगवानका शरणगहता है; भगवान अवश्य उसकी रक्षा करते हैं। रज-तम अहंकार रूप कंस, निम्नस्तरकी प्रकृतिसे चित्तमें सैकड़ों वासनाओंको उठा उठाकर भग-वानकी ओरसे चित्तको विमुख करनेका प्रयास करता है। कंस द्वारा देवकीके छः पुत्रोंके विनाशका यही रहस्य है। साधक छः बार जब असफल होकर विह्वल हृदयसे भगवानको पुकारता है। संकल्पमें दृढ़

होकर भगवानके ध्यानमें तल्लीन हो पड़ता है; तब भगवान साधकको आत्मबल देकर उसे शरणागतिकी ओर दृढ़ कर देते हैं।

देवकीके सातवें गर्भको रोहिणीके गर्भमें स्थापनका यही तात्पर्य है। 'रोहिणी' शब्द रुह् धातुसे बना है। रुह् धातुका अर्थ है आरोहण करना। इस आरोहणका तात्पर्य है, केवल भगवानकी ओर आगे बढ़ना। वेदमें इस साधनाकी अवस्थाको अभ्यारोह जप कहते हैं। अभ्यारोह जपका मन्त्र है—"**असतो मासद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय।**" हे प्रभु! मैंने अहंकार पूर्वक इस असत् नाशवान पदार्थोंका त्याग करना चाहा है, किन्तु सफल नहीं हो पाता हूं। वेद वेदान्त विज्ञान तथा शास्त्रोंको पढ़-पढ़ा कर जगतके तत्वोंकी जानकारी करनेका प्रयत्न किया है, परन्तु प्रत्येक बार ही असफल हुआ हूं। मृत्युके ग्राससे बचनेके लिये ओषधि भी खायी है, परन्तु मरनसे बचनेकी आशा तो नहीं दीखती है। अतएव आपके चरणों पर पूर्ण रूपसे अहंकारको न्योछावर कर प्रार्थना करता हूं।

हे ? सत्स्वरूप ? स्वप्रकाश चैतन्य स्वरूप ? अमृत स्वरूप भगवान ? आप इस झूठीमाया और उसके कार्योंसे बचा कर हमें अपने सच्चे स्वरूपके पास ले चलिये। अज्ञानसे निकाल कर अपने ज्ञानकी ओर ले चलिये। मृत्युसे बचाकर अपने अमृत स्वरूपकी ओर ले चलिये। इस प्रकारकी प्रार्थना करते करते और ध्यान धरते हुए; भगवानकी कृपासे साधक आत्मबलसे बलवान होकर परमानन्दका पान करता है। **परमानन्दसे आत्मबल पाना ही बलरामका जन्म है।**

बादमें साधकके हृदयमें रस स्वरूप, अमृत स्वरूप श्रीकृष्ण भगवानका विकाश होने लगता है। देवकी माताके गर्भसे श्रीकृष्ण जन्मका यही रहस्य है। इस अवस्थामें साधक का हृदय दुर्भेद्य-दुर्ग की नाई व्रज धाम हो जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, द्वेष, दम्भ और अहंकार प्रभृति हीन प्रवृत्तियोंके संस्कार समूह साधकके हृदयमें उगने पर भगवान ही; उसे विनष्ट किया करते हैं। श्री कृष्ण भगवान द्वारा कंससे प्रेरित असुरोंके विनाशका यही तात्पर्य है।

उक्त अवस्थाके बाद जब साधक लज्जा, मान, तथा भय आदि को छोड़कर मैं और मेरी समझकी जो कुछ भी है; उन सबोंको भगवानके चरणमें समर्पण कर देता है। उस अवस्थामें वह सभी कुछके त्यागके कारण नग्न कहलाता है। फिर यह उसी नग्न (संम्पूर्ण त्यागी) की अवस्थामें भगवानके निकट खड़ा हो जाता है। उस समय भगवान साधकके सात्विक अहंकारके प्रत्येक चित्त बृत्तियोंमें प्रत्येक बुद्धि बृत्तियोंमें, प्रत्येक मनो बृत्तियोंमें प्रत्येक इन्द्रिय बृत्तियोंमें इस स्थूल देहके प्रत्येक अङ्ग-अङ्गोंमें प्राणके प्रत्येक स्पन्दनोंमें एवं प्रत्येक प्रत्यङ्गों में, अपने मधुर रस धाराको, अमृत और आनन्दकी धाराको प्रवाहित करते हैं। सभी शरणागत भक्तोंको अपने रस माधुर्यका रसास्वादन करा कराकर परितृप्त कर देते हैं। **व्रजकी गोपियोंके वस्त्र हरण और उनके साथ श्रीकृष्ण भगवानकी रासलीलाका तात्पर्य यही है।** भगवानपर सब कुछ न्योछावर करनेवाला साधक इस प्रकार अनुभव करता है कि वह बालकके समान सरल हो गया है। उसमें विन्दु भर भी छल कपट तथा क्रूरता नहीं है। इसी क्रूरताहीन

सरल स्वभावको अक्रूर कहते हैं। यह अक्रूर श्रीकृष्णको व्रजधाम सेमथुरा ले जाता है। मथुरा गमनका यही तात्पर्य है। साधनाकी इस अवस्थाको साधकके हृदयकी सभी संकीर्णताओंको भगवान दूर कर देते हैं। साधक तब अन्तर बाहर सर्वत्र ही भगवानका दर्शन करने लगता है। भगवान अपने मधुर स्पर्शसे साधककी दीनता साधककी वक्र भावना आदिको नष्ट कर ऋजु, सरल और प्रेममय कर देते हैं। इसी अनुग्रहको कुब्जापर भगवानका अनुग्रह कहते हैं। दम्भ रूप कुवलया पीड़ हस्ती, दर्परूप चानूर, एवं मुष्टिकादिकोंको मारकर शरणागत भक्तके हृदयसे देहात्माभिमानी—राजसी और तामसी अहंकार रूप कंसका विनाश कर शरणागत भक्तको विशुद्ध कर देते हैं। साधकके कर्तृत्वका अभिमान और उसके भोक्तृत्वका अभिमान यहां दूर हो जाता है। मथुरा रूप शरीर तब मधुपुरी हो जाता है। सात्विक अहंकार लेकर साधक इस मधुपुरीमें वास करता हुआ भी, वह अपने मर्म मर्मसे अनुभव करता रहता है कि इस शरीर रूप मधुपुरीका स्वामी वह नहीं है। उसके इस शरीररूप मधुपुरीके राजा सर्वज्ञ, सर्ववित्, सर्व शक्तिमान तथा परमानन्द बोध स्वरूप स्वयं कृष्ण भगवान हैं। ऋषियोंने कहा है :—

"पुरमेकादश द्वारं अजस्या वक्र चेजसः।
अनुष्ठायन शोचति, विमुक्तश्च विमुच्यते ॥"

उत्पत्ति और विनाश रहित, नित्य, स्वप्रकाश चैतन्य स्वरूप आत्माकी एग्यारह द्वार वाली यह पुरी शरीर है। विवेकी व्यक्ति इन एग्यारह द्वार वाले देह रूप नगरके अधिपति सच्चिदानन्द आत्मा

का ध्यान करते हैं। इस ध्यान या निदिध्यासन द्वारा आत्म रूपसे सच्चिदानन्द भगवानका साक्षात् उपलब्धि कर शोक रहित होते हैं। मुक्त होते हैं। फिर जन्म नहीं पाते हैं। मानव शरीरके शिरके पास दो कान हैं। दो आंखें हैं। दो नाक हैं मुखगह्वर है और ब्रह्मरन्ध्र है। इन आठोंके वाद नीचेके भागमें नाभि, मूत्राशय और पायु ये तीन हैं। इन आठ और तीनको मिलाकर एग्यारह द्वार इस मधुपुरीका है। इसीलिये मानवके इस देहको द्वारवती अथवा द्वारिका भी कही जाती है। भगवानकी कृपासे साधकके स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों देहोंके रूप मथुरा फिरसे मधुपुरी रूपमें परिणत हो गया है। साधक इस समय दोनों देहोंमें रस स्वरूप श्रीकृष्ण भगवानका रसमाधुर्य पाकर तृप्त होता है। साधक अपने पूर्व पूर्व जन्मोंके संस्कारवस भगवानको जिस नाम और जिस रूपमें दर्शन पानेकी इच्छा कर चुका है, सर्ववित्, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, परमानन्द, वोध-स्वरूप, भक्त वत्सल, भगवान—शरणागत भक्तको उसी नाम, उसी रूपमें दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं। उसकी मनोकामना पूर्ण करते हैं। अपने उस भक्तके भगवान किन्तु अभी भी द्वैत-ज्ञान युक्त ही रहते हैं। उपास्य और उपासकोंके वीच भेद ज्ञान अभी भी भक्तके हृदयमें जगा हुआ है। भक्तके दोनों शरीरको समुद्रसे घिरा हुआ द्वारवती अथवा द्वारिका पुरीके रूपमें परिणत किया गया है। "समुत्पद्य द्रवन्ति अस्मिन् इति समुद्रः।" इस अर्थसे यही भाव निकलता है कि जहांसे जीव जगत उत्पन्न होकर, उसीमें विलीन हो जाता है; वही समुद्र है—यह समुद्र वही परमेश्वर है।

शरणागत साधक इस समय परमात्मा वाचक समुद्र रूप श्रीकृष्ण भगवानको सम्पूर्ण रूपसे अपने अन्दर और बाहर उपलब्धि करता है। वह अन्तर पूर्ण हैं। बाहर भी पूर्ण हैं और वह समुद्रमें डूबे पूर्ण कुम्भके समान हैं। उसी प्रकार जिस तरह समुद्र है। समुद्रमें रहने वाला घड़ा जिस प्रकार अन्तर, बाहर सर्वत्र पूर्ण कुम्भ है। इसी तरह रस स्वरूप श्रीकृष्ण भगवानके रससे, उस अमृतसे और परमानन्दसे यह जीव अन्तर बाहर और सम्पूर्ण दिशासे रसित होकर हैं। साधक सर्वदा और सर्वत्र केवल श्रीकृष्ण भगवानको ही अनुभव करता है। दास्य भाव, वात्सल्य भाव, सख्य भाव, तथा मधुर भाव आदि इस अवस्थामें अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाते हैं।

ऋषियोंका कहना है—

"यदाहि एव एषः, एतस्मिन् अदृश्ये अनात्म्ये अनिरुक्ते अनिलयने अभयं प्रतिष्ठां विन्दते। अथ स अभयं गतो भवति। यदाहि एव एषः एतस्मिन् उदरं अन्तरं कुरुते, अथ तस्य भयं भवति।" य अन्यां देवतां, उपास्ते अन्यःअसौ-अन्यः अहम् अस्मि इति न स वेद।" य एवं वेद अहं ब्रह्मास्मि इति स इदं सर्वं भवति।"

वैराग्यज्ञान विवेकी और शान्त चित्त मुमुक्षु साधक जब निर्विकार निरवयव, मन, वाणीके अगोचर निरालम्ब, परमानन्द, अमृत स्वरूप ब्रह्मको आत्म रूपमें साक्षात् उपलब्धी करता है, तब वह निर्भय

होकर ब्रह्म और आत्माकी एकतामें प्रतिष्ठित हो, अभय पद प्राप्त होता है। यह बात भी याद रखनेकी है कि यदि वह साधक आत्म स्वरूप ब्रह्ममें थोड़ा भी भेद देखता है, तो उसी समय भेद देखनेवाला साधक भय पाता है।

जो व्यक्ति सोचता है कि मैं दूसरा हूं और मेरे पूजनीय सच्चिदानन्द ईश्वर इनसे अलग हैं। इस प्रकारकी भेद दृष्टि रखकर उपासना करनेवाला ईश्वर तत्व जाननेमें असमर्थ होता है। इस प्रकारका अज्ञानी कभी भी ईश्वर स्वरूपका साक्षात् नहीं पा सकता है। जो साधक मैंही "ब्रह्म हूं" इस प्रकारका अभेद ज्ञान कर ईश्वरकी उपासना करता है, वह सर्वात्मतत्व पाता है। दीखाई पड़ने वाले सब कुछका वह ज्ञानी हो जाता है। उससे बचा हुआ अन्य कुछ भी वह नहीं देखता है। इस अवस्थामें अनेक भ्रमजाल दूर हो पड़ते हैं। "ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान" का साक्षात् अपने ही रूपमें होता है।

स्पर्श मणी लोहाको सोना बना देता है, किन्तु अपना स्वरूप स्पर्श मणी नहीं बना सकता है। रस स्वरूप सच्चिदानन्द भगवान, किन्तु असीम करुणामय हैं। वह अपने सम्पूर्ण शरणागत भक्तको अपना स्वरूप तक प्रदान कर देते हैं। साधक जब चारों ओरसे समुद्रसे घिरे द्वारिकापुरी रूप एकादस द्वार युक्त इस शरीरमें रहते हुए भी, अन्तर बाहर सर्वत्र एकसे हैं। रस स्वरूप सच्चिदानन्द कृष्ण भगवानको पाकर उनके सखा भाव और वात्सल्य भाव प्रभृतिको पुष्ट करते हुए, मनोवृत्ति और इन्द्रिय वृत्तियोंके द्वारा रसास्वाद न करते रहते हैं। उस समय करुणामय भगवान अपने शरणागत

भक्तको प्रभासमें लाते हैं। 'प्र' शब्दका अर्थ है प्रकृष्ट अर्थात् सम्यक्। "भास" शब्दका अर्थ है ज्ञान। अज्ञान लेश रहित निर्मल ज्ञान ही प्रभास शब्दका अर्थ है। भगवत्प्रेमके प्रेम रससे पूर्ण साधककी रस-भरी सैकड़ों सात्विक वृत्तियां, इन्द्रिय वृत्तियां, जिनसे साधक रसका स्वाद करते थे; उन तमाम वृत्तियोंको भगवान विनष्ट कर देते हैं। इस अवस्थामें भक्त वायु विहीन तथा कम्पन हीन प्रदीपकी नाईं भक्तके हृदयको प्रशान्त कर स्थिर कर देते हैं। क्योंकि यह रसा-स्वादन भगवानको आत्म रूपसे पानेमें प्रतिबन्धक है। प्रभासमें यदु-वंशियोंके विध्वंसका यही तात्पर्य है।

साधकके प्रशान्त चित्तमें कोई भी विकल्प नहीं उठता है। उस समय वही विवेक-पूर्ण वैरागी प्रशान्तचित्त परीक्षित आत्मवलसे बलवान हो पड़ता है। आनन्दमय बलराम रूप साधक, निर्विकल्प समाधि लगाकर, तक्षक रूप संसारके विषमें बराबर जलते हुए, इस नश्वर देहको छोड़ते हुए, अपने अमृत स्वरूपमें, परम आनन्द स्वरूपमें ठहरते हैं। भक्तके साथ भगवानकी रासलीला प्रभासमें आकर समाप्त होती है। गुरूके पाससे परीक्षित-शिष्यने ज्ञानके उपदेशोंको सुन कर और मनन करते हुए, उनसे हाथ जोड़कर कहा था—

भगवन् तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न विभेम्यहम्
प्रविष्टो ब्रह्म निर्वाणं, अभयं दर्शितंत्वया ॥"

हे भगवन! आपके द्वारा उपदेश पाकर अभय निर्वाणपद कैवल्य स्वरूप पर ब्रह्ममें हमारा चित्त प्रवेश कर गया है। मैं और तक्षक

रूप मृत्युसे नहीं डरता हूँ। इस प्रकार गुरूको प्रणाम करते हुए शिष्य परीक्षित निश्चल ठूंठे पेड़की तरह निर्विकल्प समाधिस्थ होकर ब्रह्मके अभय पदमें प्रतिष्ठित हो गये।

"भवे भवे यथा भक्तिः।
पादयोस्तव जायते ॥
तथा कुरुष्व योगेश।
नाथस्त्वं मे यतः प्रभो ॥"

हे प्रभु! हे योगेश्वर? जन्म जन्ममें आपके चरण कमलमें मेरी अचला भक्ति बनी रहे, इसकी व्यवस्था आपही करें। आपको छोड़ कर मेरा और कोई पालने वाला नहीं है। आप ही एक मात्र मेरी गति हैं।

—*—

रास-लीला (२)

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदञ्च विष्णोः ।
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ॥
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥"

भा० १०।३३।४०

जो पुरुषोत्तम श्री कृष्णकी व्रज वधूओंके साथ अपूर्व रासलीला को श्रद्धाके सहित श्रवण एवं वर्णन करते हैं, वे भगवानमें परा भक्ति पाकर शीघ्र ही समाहित चित्त होकर हृदयके रोग रूप कामना समूहोंको छोड़ सकनेमें सफल होते हैं।

मैंने पहले पुरुषोत्तम श्री कृष्णकी रासलीलाका वर्णन किया है, किन्तु रासलीलासे ही कृष्णकी व्रज लीलाका अन्त नहीं होता है। एक दिन गोपोंने शिवरात्रिका व्रत रक्खा और सरस्वती नदीके तट पर अम्बिका वनमें जाकर अम्बिकाके साथ शिवकी पूजा की।

पूजनके बाद नन्द प्रभृति गोप गणोंने ब्राह्मणोंको प्रचुर दान दिया। जब रातमें उसी सरस्वतीके किनारे वे ठहरे थे, तो उस समय एक बड़ा अजगर आकर सोये हुए नन्दजीको खाने लगा। नन्दजीकी चिल्लाहटसे सभी उठ गये और अजगरको जिसने जो वस्तु सामने पायी, उसीसे मारना आरम्भ कर दिया, किन्तु इससे भी वे उस सांपके मुखसे नन्दको नहीं निकाल सके। उस समय नन्दजीने कृष्णः को पुकारना आरम्भ कर दिया।

"स चुक्रोशाहिनाग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम्। सर्पो मां ग्रसते तात, प्रपन्नं परिमोचय।" भा० १०।३४।७

हे कृष्ण! हे कृष्ण, यह बड़ा अजगर हमें खा रहा है, मैं तुम्हारे शरणमें हूं, हमें बचाओ? भगवान श्री कृष्ण नन्दजीकी पुकार पर वहां पहुंचे और सांपके देहमें उनके पांव मारते ही, भगवानके चरण स्पर्शसे अजगरने दिव्य रूप धारण किया। सुदर्शन विद्याधरका रूप धारण कर श्री कृष्णकी स्तुति और प्रदक्षिणा कर दीव्य धाम चला गया। नन्दजी भी सांपके मुखसे बच गये।

मैंने पहले ही कहा है—शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य, भावोंकी उपासना पूर्णाङ्ग नहीं है। यद्यपि नन्दजीका हृदय शुद्ध और निर्मल था, तथापि उनका वह शुद्ध हृदय भगवानके चरणोंमें शरणागतिकी पूर्णताको नहीं पा सका था। श्रीकृष्ण भगवानमें वात्सल्य भावना रहनेसे वे श्रीकृष्णके अतिरिक्त भी अन्य देव देवियोंकी पूजा और भेंट चढ़ाकर अपना तथा श्री कृष्णके मंगल साधनमें लगे हुए थे।

इसीसे अविद्या रूप सर्प आकर उन्हें खा रहा था। ज्योंही

नन्दजी सर्वान्तःकरणसे श्रीकृष्णके शरणमें पहुंचे, उसी समय उनकी अविद्या छूट गई और उसी जगह विद्याधरके रूपमें सुदर्शनरूप विद्या आकर प्रकट हो गई। भगवान श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

"तेषा मेवानु कम्पार्थ महमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्म भावस्थो ज्ञान दीपेन भास्वता ॥
तेषां सतत् युक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम् ।
ददामि बुद्धि योगंतं येन मामुपयान्तिते ॥"

जिनके मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और इन्द्रियां केवल भगवान की कथामें—भगवानके नाम—जापमें तथा भगवानके ध्यानमें लगी रहती हैं, उनके उस उत्तम शुद्ध चित्तमें भगवान श्रीकृष्ण स्वयं निवास करते हैं। भगवान उज्ज्वल ज्ञान रूप प्रकाशके द्वारा समस्त अज्ञान रूप अन्धकारको दूर कर देते हैं। बराबर कृष्णमें लगे रहने वाले और प्रेम-पूर्वक भजन करने वाले अपने एक निष्ठ शरणागत साधक भक्तको भगवान स्वयं वह ज्ञान प्रदान करते हैं, जिस ज्ञानसे जिस उपायसे साधकगण भगवत् साक्षात्कार करनेमें समर्थ होते हैं। साँपके मुँहसे नन्दजीके छुटनेपर एक दिन रातमें श्रीकृष्ण और बलराम चाँदनीसे प्रकाशित व्रज-धाम वनके बीच गोपियोंसे घिरकर विहार कर रहे थे; उसी समय शङ्खचूड़ नामका एक दैत्य वहां आकर कृष्ण और बलरामकी उपेक्षा करता हुआ, गोपियोंको चुरा कर ले जाने लगा। गोपियां अपनेको शङ्खचूड़के द्वारा पकड़ा हुआ समझ कर जोर-जोरसे रोनें लगीं, और रोती हुई कृष्ण तथा

बलरामको पुकारने लगीं। श्री कृष्ण और बलराम शरणागत गोपियों की पुकारपर ; उन्हें शङ्खचूड़के पंजेसे छुड़ानेको दौड़ पड़े। कृष्ण और बलरामको आते हुए देखकर शङ्खचूड़ गोपियोंको छोड़कर जान बचानेके लिये भागने लगा। श्री कृष्णने अपने बड़े भाई बलरामजी को गोपियोंको रक्षाके लिये रख कर स्वयं शङ्खचूड़के पीछे दौड़ पड़े और शीघ्र ही उसे मारकर उसके माथेपर लगा हुआ उजला शङ्ख मणि लेकर अपने बड़े भाईके पास लौट आये, वह शङ्खमणि बल-रामजीको समर्पित किया।

साधक जब व्रज-गोपियोंकी तरह सभी प्रकारसे भगवानके चरण मे शरणागत होता है, एवं वह सच्चिदानन्द घन पुरुषोत्तम श्री कृष्ण का दर्शन पाता है, और इस आनन्दसे भर जाता है, तब उसके चित्त में बीच-बीचमें यश पानेको इच्छा उठती रहती है, कारण यह है उस समय भी उसका अहंकार–या अभिमान पूरी तरह लोप नहीं हो पाता है, ऐसा साधक अखण्डैक रस पुरुषोत्तम श्रीकृष्णमें पूर्णरूपसे ठहराव नहीं कर पाता है। आनन्दानुभूतिका भी सूक्ष्म स्तर हैं, आन-न्दानुभूति होते रहनेसे ही साधक यदि विचार करे—कि वह एक बहुत बड़ा साधक हो पड़ा है—और इस बातको दुनिया जाने–सभी उसकी प्रशंसा करे और बहुतसे शिष्य भी उसके हो पायें—चारों ओर उसके आश्रम बन जाय, रुपयोंकी वर्षा हो, जिससे संसार उसकी प्रशंसा करते हुए ; सभा सोसाइटियोंमें उसका व्याख्यान करावे—समाचार पत्रोंमें उसके नाम छपें ? साधकका चित्त जब इस प्रकार आनन्दानुभूति होने पर शङ्खचूड़ दैत्यके शिरपर विराजित मणि-रूप-

यशकी आशापर मुग्ध होता है, तब उसी आशाकी कामनासे साधक का चित्त पुरुषोत्तम श्री कृष्णसे दूर जा पड़ता है। साधक जब अपनी इस गलतीको समझ पाता है, और अनुभूति भरे चित्तसे शरणागत होता है, तब भगवान स्वयं आकर साधकके हृदय-स्थित यशकी कामना रूप शङ्खचूड़को विनष्ट कर देते हैं। उसके चित्तको आत्मबल से बलवान बना देते हैं।

शङ्खचूड़को मारनेके बाद श्रीकृष्णने अश्वरूपी केशीदैत्य एवं व्योमासुरको मारकर व्रजधामको उपद्रवहीन किया था। साधकके निर्मल हृदयमें जब सच्चित आनन्द घन भगवान श्रीकृष्णकी अपरोक्षानुभूति होती है, तब साधकका प्राणवायु अपने आप शान्त हो जाता है। उसे और अलगसे प्राणायाम नहीं करना पड़ता है।

आनन्द स्वरूपकी अनुभूतियोंके कारण प्राणवायु अपने आपही स्थिर होनेसे, साधकका केवल कुम्भक अभ्यास होता है। मनमे संयम होनेसे मानसिक शक्ति भी विशेष बढ़ जाती है। प्राणायाम एवं मनका संयम घनिष्ट होकर स्थिर होनेसे, साधकमे ज्ञान, आनन्द एवं शक्तियां बहुत बढ़ने लगतो हैं और उसी समय दिव्य विभूतियां उसके करतल होती हैं। इस समय देवता भी साधकको विघ्न डालने लगते हैं। वेदने कहा है—

"तस्मादेषां तन्नप्रियं यदे तत् मनुष्या विद्युः"

—बृ० आ० १।४।

देवता नहीं चाहते हैं कि मनुष्य भी आत्मज्ञान पाकर मोक्ष पावें। व्यासदेवजीने भी कहा है—

"क्रिया वद्भिर्हि कौन्तेय, देवलोकः समावृतः ।
न चैतदिष्टं देवानां, मर्त्त्यैरुपरिवर्त्तनम् ॥"

मानव जिस भगवानका दर्शन कर आप्त काम हो एवं आत्मानन्द होकर देवताओंको लांघ जाय; इसे देवता नहीं चाहते हैं। इसीलिये देवता सब बहुतसी लुभानेवाले वस्तुओंको साधकके पास जुटाते हैं। साधकको यदि उन प्रलोभनोंकी वस्तुओं और अपनी विभूतियों पर आसक्ति जम जाय तो, उस साधकका फिर पतन हो जाता है। साधना विनष्ट हो पड़ती है।

"क" माने ब्रह्मा है एवं "ईश" माने शंकर होता है, इन्हीं दोनोंके मेलसे "केश" शब्द बनता है, जिसका माने ब्रह्मा और शङ्कर होता है। साधकके विभूतियुक्त होनेपर ब्रह्मा और शंकरके ऊपर आधिपत्य करनेकी यदि उसके हृदयमें प्रबल राजसिक प्रवृत्ति उठती है; तो भगवान स्वयं अपने शरणागत साधककी उस प्रवृत्तिको दूर कर देते हैं। साधनाकी इस अवस्थामें पंचतन्मात्र भी पूरी तरह साधकके हाथ आता है। शब्द तन्मात्र और आकाश तन्मात्र सम्पूर्ण रूपसे हाथ आनेपर अनेक प्रकारकी दीव्य भोगोंकी वासनाएँ साधकके हृदयमें उगती हैं। जो साधक किन्तु भगवानमें एक निष्ठ शरणागत है, भगवान उसकी सभी तरहसे रक्षा करके उसे अपना लेते हैं। इसलिये हम सब देख पाते हैं कि पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने अपने एक निष्ठ शरणागत ब्रजवासियोंके चित्तसे विभूतिकी आसक्तिको, दिव्य भोगवासनारूप केशी दैत्य तथा व्योमासुरको दूरकर, ब्रजवासियोंके चित्तको निर्मल एवं एकमात्र भगवत्परायण कर दिया था।

भगवान श्रीकृष्णके द्वारा व्रजधामके इस प्रकार विघ्न-विहीन होनेपर भी व्रजनिवासी एकदम निःशंक नहीं हो पाये। कारण था कि मथुरामें कंस अभी भी था ही। व्रजवासियोंको बीच-बीचमें डर होता था कि पता नहीं और कौनसा दैत्य वह व्रजको विध्वंस करने भेज दे ?

साधकमें जबतक कंसरूप अहंकार या अभिमान रहता है, तब तक वह पूरी तरह आनन्दघन श्रीकृष्णमें ठहराव नहीं कर पाता है। अहंकार और अभिमान पूरी तरह हटे बिना चित्त एक निष्ठ होकर भगवानमें अर्पित नहीं होता है।

व्रजवासियोंकी भावना जानकर श्रीकृष्णजीने व्रजको निष्कण्टक करनेके लिये कंसका बध करने को ठाना। देवर्षि नारदने एकबार मथुरामें जाकर कंससे कहा—वसुदेवजीने तुमसे फरेब कर देवकीके आठवें पुत्रको नन्दके घर रख दिया है और यशोदाके गर्भसे उत्पन्न कन्याको लाकर तुम्हें दिया था। अतएव जबतक तुम नन्दके घरमें बढ़नेवाले वसुदेव पुत्र श्रीकृष्णको नहीं मारते हो ; तबतक तुम्हारा जीवन निरापद नहीं है।

इस बातको कहकर नारदजीके जानेपर कंस भयानक क्रोधित हो पड़ा। उसके आदेशसे वसुदेव और देवकी फिर बेड़ियोंसे जकड़ कर जेल भेज दिये गये। बादमें कंसने मन्त्रियोंको बुलाकर नारदजी की बातोंको बताते हुए ; कृष्ण और बलरामको मारनेके लिये धनुर्यागका प्रबन्ध करने को कहा। रंगमञ्च बनाये गये, रंगमञ्चके द्वारपर कुवलया पीड़ हाथीको रक्खा गया। अभिप्राय यही तय हुआ

कि कृष्णके द्वारपर आतेही जिसमें कुवलया पीड़ द्वारा कृष्ण मार डाला जाय। हाथी अगर कृष्णको नहीं मार सके तो कृष्णके रंग-मञ्चमें ढूकनेपर चाणूर तथा मुष्टिक योद्धाओं द्वारा कुश्तीसे मार डाला जाय। कृष्णकी हत्या करनेकी व्यवस्था करके कंस यादव श्रेष्ठ अक्रूरको कृष्ण और बलरामको मथुरामें लिवालाने नन्दके घर भेज दिया।

कंसने अक्रूरजीसे अपने सभी मानसिक अभिप्रायोंको भी बता दिया था। कंसका उद्देश्य था कि वसुदेव पुत्र कृष्ण और बलरामको मार डाला जाय। कृष्ण और बलरामके मरनेपर उस शोकसे देवकी और वसुदेव भी मरेसे हो पड़ेंगे; तब जरासन्ध, शम्बर, नरक, बाण, आदि राजाओंकी सहायतासे देव पक्षपाती उग्रसेन, देवक और अन्यान्य राजाओंको मारकर स्वयं सारी पृथ्वीका राजभोग कर लेंगे। कंसने इसीलिये अक्रूरको मीठे शब्दोंसे अनुरोध कर कहा—

"एतज् ज्ञात्वाऽऽनय क्षिप्रं, रामकृष्णाविहार्भकौ।
धनुर्मख निरीक्षार्थं द्रष्टुं यदु पुरश्रियम्॥"

भा० १०।३६।३७

आप मेरे इन अभिप्रायोंको ज्ञान गये, अब जल्दीसे बलराम और कृष्ण दोनों बच्चोंको धनुर्यज्ञ तथा यदुपुरी (मथुरा) की शोभा देखनेके लिये यहां ले आइये!

कंससे आज्ञा पाकर अक्रूरजी रथपर बैठकर बलराम और कृष्णको लिवानेके लिये व्रजकी ओर चल पड़े।

श्रीकृष्ण क्या तत्व है, इसे विलक्षण होनेके नाते अक्रूरजी जानते थे। इतने दिनों तक वे कंसके राज्यमें थे; इससे अपने मनकी भावनाको नहीं खोलते थे। इस समय कंसके राज्यसे वाहर होकर अक्रूरका कृष्णमय पवित्र भक्तिसे भरा हृदय आनन्दसे उछलने लगा। अक्रूर कहने लगे—

"ममाद्या मङ्गलं नष्टं, फलवांश्चैव मे भवः
यन्न मस्ये भगवतो, योगि-ध्येयाङ्घ्रि-पङ्कजम्।
कंसोवताद्या कृत मेऽत्यनुग्रहम्,
द्रक्ष्येऽङ्घ्रि-पद्मं प्रहितोऽमुना हरेः॥"

भा० १०।३८।६-७

आज मेरे सभी अमङ्गल और सारी अनर्थोंकी राशियां विनाश हो गईं। योगी गण जिसके चरण कमलोंका ध्यान अपने अपने हृदयमें अनुभव करते हैं, भगवानके उन्हीं चरणोंको छूनेमें आज हम समर्थ होंगे। उनका साक्षात् दर्शन कर हम जन्मको सार्थक करेंगे। कंसने आज मुझ पर बड़ी ही कृपा की है। उसके द्वारा भेजा गया मैं श्री हरिके चरणोंका दर्शन करूंगा। आनन्दसे भर कर बरावर कृष्णकी चिन्ता करते हुए अक्रूर व्रजकी ओर आगे बढ़ते गये।

इधर देवर्षि नारद श्रीकृष्ण भगवानके दर्शनके लिये व्रजमें पहले ही आ पहुंचे। श्रीकृष्णका दर्शनकर ऋषिने प्रेमसे कहना आरम्भ किया—

"त्वामात्मा सर्वभूताना मेको ज्योतिरिवैधसाम् ।
गूढ़ो गूहाशयः साक्षी, महापुरुष ईश्वरः ॥"

भा० १०।३७।१२

हे कृष्ण ! हे अप्रमेय । तुम्हें मूर्त रूपमें देख पानेपर भी तुम वास्तवमें स्वरूपतः अप्रमेय हो। तुम सभी प्राणियोंकी आत्मा हो। काठमें जले आगकी तरह तुम सर्वत्र अनुस्यूत होकर हो। तुम बुद्धि रूप गुहामें बराबर रहते हो, तुम बुद्धि, मन, इन्द्रिय, देह और यहां तक कि सभी भूतके अन्दर एवं बाहर रह कर भी उन सबोंके कार्यों में लिप्त नहीं होते हो। कारण है तुम साक्षी हो, केवल द्रष्टाके रूपमें रहते हो। स्वरूपमें रहकर भी अपनी माया शक्तिके द्वारा महापुरुष रूपमें अवतार लेकर लीला करते हो। हे सर्व जगतके नियामक ! हे ईश्वर ! तुम्हे प्रणाम है। दुर्मद असुर प्रकृति राजाओंके विनाश करनेको, साधुओंकी रक्षाको और सनातन वैदिक धर्मकी स्थापनाको कृष्णके रूपमें प्रकट हुए हैं। अक्रूर शीघ्र ही आपको मथुरा ले जानेके लिये व्रजधाममें आ रहे हैं। मथुरामें आपका कंस विनाश तथा अन्यान्य असुर विनाशकी लीलाओंको देख कर हमें सन्तोष होगा। फिर द्वारिका एवं कुरुक्षेत्रमें पार्थ सारथीके रूपमें जो आपकी लीला होगी; उस लीलाकी मधुरताको देख कर मैं धन्य होऊंगा। भगवान के साक्षात्कारसे नारदके हृदय, और मन भर गये। वे कहने लगे—

"विशुद्ध विज्ञान घनं स्व संस्थया ।
समाप्त सर्वार्थ ममोघ वाञ्छितम् ॥

स्वतेजसा नित्य निवृत्त मायया।
गुण प्रवाहं भगवन्नमीमहि ॥"

भा० १०।३७।२३

हे भगवान! तुम विशुद्ध विज्ञान घन हो। तुममें ज्ञातृ ज्ञेय की भावना नहीं है। इन्द्रियोंकी सहायतासे होने वाले जो ज्ञान हैं, उन ज्ञानोंकी उत्पत्ति और विनाश दोनों हो हैं, किन्तु तुम स्वप्रकाश हो। तुम स्वयं भी अपना विषय नहीं हो। तुम केवल मात्र चैतन्य स्वरूप हो। तुम सच्चिदानन्द रूप हो। अपनी महिमामें आप ही विराजते हुए; आप्त काम हो। तुम सत्य संकल्प हो। तुम सृष्टि, स्थिति और संहारके कार्योंको करते हुए भी; उन उन कार्योंमें लिप्त नहीं हो। कारण है कि करोड़ों सूर्यकी नाईं प्रकाशित और करोड़ों चन्द्रमाकी नाईं शीतल चैतन्य-ज्योतिस्वरूप हो। तुममें माया और उसके जगतके प्रपञ्च कार्य जरा भी नहीं हैं। तुम असङ्ग हो। अखण्डैक रस एवं स्व प्रकाश होनेपर भी, अपनी माया शक्तिके अवलम्बपर जगतको कल्पना बनाकर खेल रहे हो। मैं सभी रूपसे तुम्हारा शरण गहता हूं।"

देवर्षि नारदजीने इस प्रकार श्री कृष्ण भगवानकी स्तुति कर भगवानकी आगामी लीलाओंको देखनेके आनन्दमें भर कर; श्रीकृष्ण को साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुये, उनसे आज्ञा पाकर व्रज धामको छोड़ दिया।

मैंने आगे बताया है कि श्रीकृष्णमें लगे प्राणवाले अक्रूर श्रीकृष्ण की चिन्ता करते करते रथपर बैठ कर व्रजधामकी ओर आगे बढ़

रहे थे। अक्रूरके मन, बुद्धि, चित्त और इन्द्रियां केवल श्रीकृष्ण भगवानके ही ध्यानमें तल्लीन थीं; वे सोच रहे थे—

"न मय्युपैष्यत्यरि बुद्धिमच्युतः,
कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ।
योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितम्,
क्षेत्रज्ञ ईक्षत्य मलेन चक्षुषा ।"

मैं कंस द्वारा पठाया हुआ भगवानके पास जा रहा हूं। मुझे कंसका दूत विचारकर भगवान पूतना तथा वकासुरकी नाईं कभी भी नहीं मारेंगे। भगवान तो असुरोंको मारते हैं। वह उन सबोंके लिये ठीक ही करते हैं। कारण है कि भगवानके स्पर्शसे वे सब असुर अपनी आसुरी वृत्तियोंको छोड़कर सात्विक स्वभावके हो जाते हैं। भगवानमें चित्तके अर्पणसे वे सब धीरे-धीरे भगवानके दर्शन करने को समर्थ हो जाते हैं। भगवान सम्पूर्ण जगतके बाहर भीतर व्याप्त होकर हैं। वही इस शरीरूप क्षेत्रके प्रकाशक क्षेत्रज्ञ पुरुष हैं। मनका ऐसा कोई भी भाव नहीं है, जो चैतन्य स्वरूप भगवानके द्वारा प्रकाशित नहीं होता हो। ऐसा कोई भी संकल्प मनमें नहीं उठ सकता है, जो उस सत्स्वरूप भगवानकी अपेक्षा न करता हो। घड़ा या कोई घर उत्पन्न होने पर जैसे आकाशको लेकर ही उत्पन्न होता है, उसी प्रकार हृदयका प्रत्येक भाव मनके प्रत्येक संकल्प और विकल्प उसी सत्-चित्-आनन्द स्वरूप भगवानके ही साथ उत्पन्न होते हैं। चैतन्यकी सत्ता और प्रकाशसे ही तो सभी पदार्थ ज्ञानसे

भासमान होकर सत्ता पाते हैं। अतएव मेरे मनके भाव अन्तर्यामी श्रीकृष्ण भगवानसे छिपे नहीं हैं। मैं कंसका दूत होनेपर भी मेरा चित्त जो एकमात्र उन्हींमें अनुरक्त है, इसे वे निश्चय ही जानते हैं। अक्रूर इस प्रकार सोचते-सोचते व्रजधाम पहुंच गये। अक्रूर जिस समय व्रज पहुंचे उस समय गोधुलीका समय था। रथमें बैठे ही अक्रूरने भूमिपर श्री कृष्णके ध्वजा, वज्र, और अङ्कुशके चिन्ह वाले चरण चिन्हको देख लिया।

भगवानके जिस परमपदका ऋषि, मुनि, ज्ञानी, भक्त और देवता गण बराबर ध्यान करते हैं, जो परमपद परमानन्द-स्वरूप हैं, सभी जीवोंका जो एकमात्र लक्ष्य है। अक्रूरजी व्रजधाम आकर उसी श्री कृष्णके दुर्लभ परमपदके चिन्हको देखकर आनन्दसे भर गये। वे रथसे उतर कर रोमाञ्चित देहसे और आनन्दसे गदगद होकर उस चरण-रजको अञ्जलिमें भर-भरकर माथेपर चढ़ाने लगे। श्री कृष्ण भगवानके पद रेणु स्पर्शसे अक्रूरके हृदयसे दम्भ, भय, शोक दूर हो गया। चित्त निर्मल हो गया। अक्रूरके मनमें लगा कि एक विमल आनन्दकी धारा उनके शिरसे पांव तक छा गयी है। उसी समय सामने ही अक्रूरजीने देखा कि—

"किशोरौश्यामलश्वेतौ, श्री निकेतौ बृहद्भुजौ।
सुमुखौ सुन्दर वरौ, वालद्विरद विक्रमौ॥
प्रधान पुरुषात्राद्यौ, जगद्धेतु जगत्पती।
अवतीर्णौ जगत्यर्थे, स्वांशेन बल केशवौ॥"

भा० १०।३८।२६-३२

नवीन मेघकी नाईं श्याम कलेवर तथा श्वेत वर्ण, सम्पूर्ण सौंदर्य के आधार, हाथीके बच्चोंके समान पराक्रमशाली, सुन्दर मुख, सुन्दर देह, जगत्कारण, सभीके प्रतिपालक, जगत्के भारको दूर करनेके लिये अवतीर्ण हो, किशोर वयस्क श्रीकृष्ण और बलराम खड़े हैं। भगवान का साक्षात्कार पाकर अक्रूरके आनन्दकी सीमा नहीं रही। आनन्दकी विह्वलताके कारण अपना परिचय देनेमें असमर्थ होनेपर भी अन्तर्यामी श्री कृष्ण भगवानने अक्रूरको अपने दोनों हाथोंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। रास्तेमें आते आते अक्रूरने जो सब विचारा था, भगवानने उनके उन सभी विचारोंको पूरा कर दिया। बादमें अक्रूरने कृष्ण, बलराम और नन्द प्रभृतिसे सत्कार पाकर महाराज नन्दसे कहा कि, वे मथुरामें धनुर्यज्ञ दिखानेके लिये कृष्ण और बलरामको लेने कंसकी आज्ञासे व्रजधाम आये हैं। अक्रूरकी बातोंको सुनकर महाराज नन्दने अत्यन्त प्रसन्न होकर कृष्ण बलराम एवं बंधु बांधवोंके साथ धनुर्यज्ञ देखनेके लिये मथुरा जानेकी तैयारी का आदेश दिया। भगवान श्री कृष्णने कहा है—

"भक्त्या त्व नन्यया शक्यो ह्यहमेवं विधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥"

हे अर्जुन! हे परन्तप! एकमात्र अनन्य भक्ति द्वारा मेरे विश्व रूपको जाना जा सकता है। साक्षात्कार और मुझमें सायुज्य पाया जा सकता है।

भगवत्साक्षात्कारका प्रधान उपाय है, अनन्या भक्ति। इस समय इस अनन्या भक्तिको ठीकसे समझना होगा। हम सबोंके चित्तमें

बराबर ही विषय भोगकी वासनाके संकल्प और विल्प उठते रहते हैं। चित्त भी उन्हीं-उन्हीं विषयोंके आकारसे आकारित हो पड़ता है। स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, परिवार, वन्धु, बान्धव, मान, प्रतिष्ठा, यश, अर्थ, दया, दान, ईर्षा, द्वेष, क्रोध और ठगी आदि हम सबोंके चित्तमें तरङ्ग पर तरङ्ग उठते हैं। हम सबोंके चित्त भी इसी प्रकार रूप, रस, गंध स्पर्श, शब्दरूप विषय एवं उन उन विषयोंके भोग जनित संस्कारोंके द्वारा विक्षुव्ध होकर सर्वदा क्षिप्त और विक्षिप्त अवस्थाको प्राप्त होते है। मनमें जव जो भाव उगता है, उसी समय वह विवेक और विचारहीन होकर उन्हीं उन्हीं भावोंके पीछे दौड़ पड़ता हैं। मनकी इस अवस्थाको क्षिप्त अवस्था कही जाती है। इस क्षिप्त अवस्थाके बीच बीचमें मनमें यदि यह भाव उठे कि "मैं क्या कर रहा हूं। मेरी इतनी उम्र हुई, इतने दिनों तक गृहस्थी चलाई, किन्तु कहां थोड़ी भी तो शान्ति और आनन्द नहीं पाया। सुख पाऊंगा मानकर स्त्रीके पीछे पीछे, वेटाके पीछे-पीछे, भाई-वन्धुओंके पीछे-पीछे अनेक भोग पदार्थोंके पीछे, धनके पीछे, यश, मानके पीछे भटकता रहा; किन्तु कहीं इनमेंसे किसीने तो मेरे हृदयके सवको पूरा नहीं किया। सुख जो एकदम ही नहीं पाया, ऐसा भी नहीं; किन्तुविषय समूहोंको भोग कर जो भी थोड़ा सुखका स्वाद लिया है, उसके चार गुणा अधिक तो दुःख ही पाया है। सारा जीवन मानो अस्पतालका रोगीसा होकर काटनेपर उतारू हूं। सुख पाऊंगा मानकर जिस वस्तुको पकड़ी है, वही वस्तु मेरा हाथ छुड़ाकर दूर जाकर मेरी हंसी उड़ा रही है। वह वस्तु कभी भी मेरी नहीं हुई। उलटे वह मेरे

मनमें एक प्रकारकी चञ्चलता उद्वेग और आकांक्षाको जगाकर भाग पड़ी है। अबसे विषयोंके पीछे पीछे और दौड़ नहीं मारूंगा। इस बार हम शास्त्रके अनुसार काम करेंगे एवं परमेश्वरके ध्यान और उसके नामका जाप कर बची उम्र बिता देंगे।

मनमें जब इस प्रकारके भावका उदय होता है, तब मनुष्य परमेश्वरका ध्यान और जाप करनेमें लग पड़ता है। कुछ दिनों तक तो जप और ध्यान ठीकसे चलते रहते हैं, बादमें इतने दिनों तक उसने जो घेरा घेर रक्खा है, वह सरलतासे भंग नहीं हो पाता है। अब यह घेरा उसे विघ्न और बाधा पहुँचाने पर तुलता है। ऐसा होने लगता है कि वह पूजा करने बैठा है, या स्तोत्र पाठमें लगा है, उसी समय उसके परिचित बन्धु-बान्धव उसके घर पहुंच गये। उसे पूजापाठमें लगा देखकर किसोने उसकी हंसी उड़ाते हुए कहा—क्यों जी? बड़े भारी धर्म-पुत्र युधिष्ठिर हो पड़े हो! उठो! उठो! ये सब बुजुर्गोंकी सराफतें रहने दो। चलो यार सिनेमा देखें! गानबाजोंसे मन बहलायें। इन सब पूजों-टूजोंसे क्या होगा? कहो तो? राजा मान्धाताके समयके इन पुराने पुस्तकोंका वर्तमान समयमें क्या मूल्य है। इन्हें पढ़कर क्या होगा। सच बोलो। किसीको ठगो मत। हंसते खेलते स्त्री-पुत्रको लेकर घर दुआर संभालो। दो चार पैसोंका रोजगार जिसमें हो ऐसी चेष्टा रक्खो। ऐसा नहीं करके तो "धरम बूढ़ी" की तरह पूजा और भाँड़ बाबाकी तरह पाठ करने बैठे हो। उठो! यार बहुत हुआ। देरी क्यों कर रहे हो। कभी गृहणी ही आकर बोलने लगीं—इस कामको करना होगा और उसे भी पूरा

४

करना होगा। हमें यह चाहिये और वह चाहिये, कभी लड़कोंने ही हल्लागुल्ला करना आरम्भ कर दिया। यहां तक कि किसीके द्वारा तंग नहीं करनेपर भी, स्वयं उसके हृदयमें वे सब भोगकी चिन्तायें जमती हैं, जिन्हें उसने कभी पहले भोगा है। इन सब भोग्य विषयोंके संस्कार ; उन सब विषयोंकी चिन्तायें बनकर ध्यान, पूजा और पाठ के समय, काल्पनिक-मानसिक जगतमें ऊठा ऊठाकर पूजा, पाठ और ध्यानमें विघ्न लाते हैं। मन उचाट करते हैं। सब बेकार कर देते हैं। मनकी इस अवस्थाको विक्षिप्त अवस्था कही जाती है।

मनुष्य जब बार बार विषय-भोगकी असारताको देखकर अनित्य जगतमें नित्य वस्तुके ढूंढ़नेमें लगता है। संसारके झूठेपनको ठीकसे जानकर ; जब सच्चा वैराग्य पाने लगता है, तब उसका चित्त एक मात्र परमेश्वरकी ओर दौड़ पड़ता है। उसी समय उस व्यक्तिके हृदयमें एक निष्ठ भक्तिका उदय होता है। उस समय वह परमेश्वरको छोड़कर दूसरी किसी भी वस्तुओंको नहीं देखना चाहता है। जिस किसी भावमें परमेश्वर ही हमारे पिताके रूपमे, मांके रूपमे, स्त्रीके रूपमे, पुत्रके रूपमे, कन्याके रूपमे, परिवारके रूपमे, मित्रके रूपमे, भाईके रूपमे और दीन-दुःखियोंके रूपमे, छोटी-बड़ी मूर्तिको धरकर, अनेक प्रकारके सम्बन्धोंसे जुड़कर; मेरी सेवा लेनेके लिये विश्वरूपमें प्रकाशित हो रहे हैं। अपने देहको भी हम उस समय परमेश्वरका श्रेष्ठ मन्दिर मानने लगते हैं। जिस भावमें पिता माता हमारे वास्तविक मां बाप नहीं हैं। ईश्वर ही इन मूर्तियोंको धरकर मेरी सेवा लेने आये हैं। स्त्री मेरी स्त्री नहीं है। पुत्र और कन्या मेरे

पुत्र-कन्या नहीं हैं। दीन और दुःखी मेरे दयाके पात्र हैं ; वे दीन और दुःखी नहीं हैं। ईश्वर ही इन सब मूर्तियोंको धरकर मेरी पूजा लेने आये हैं। वह साधक उस समय पिताकी सेवा नहीं समझ कर पिताके रूपमें ईश्वरकी पूजा और सेवा समझता है। भगवानकी ही सेवा समझकर, वह उस समय स्त्री, पुत्र और कन्या आदिके अभावको पूरा किया करता है। वह उस समय व्यवसाय अथवा नौकरी नहीं करता है। वह इसे यही समझता है कि स्वयं भगवानने ही उससे सेवा करानेके लिये पहलेसे एक वृत्ति निश्चित कर रक्खी है। वह इस वृत्तिको केवल ले आने वाला है। वह अपने स्नानको अपने इष्ट मन्दिरकी सफाई समझता है। अपने खाने को वह अपने शरीर रूप मन्दिरमें नित्य विराजित भगवानको खिलाना समझता है। बैठने पर वह समझता है कि उसके पास ही इष्टदेव बैठे हुए हैं। वह जब खड़ा होता है तो समझता है कि इष्टदेव खड़े हैं और चलने पर समझता है कि साथही साथ इष्टदेव भी चल रहे हैं। सोनेपर देखने लगता है कि उसके सिरहाने इष्टदेव विराज रहे हैं, वह उनके चरण पर मस्तक रखकर सो रहा है। इस प्रकार खाते, सोते, उठते, बैठते, चलते फिरते बराबर और सब ठौर उसका मन एक इष्टदेवको छोड़कर दूसरी किसी भी जगह नहीं टीकता है। दूसरोंसे बातें करनेमें यदि उसका मन इष्टदेवसे हट पड़ता है। तो उसी समय बातें समाप्त हो जाती हैं। वह तुरन्त ही फिर मनको इष्टदेवमें जोड़ता है। इस प्रकार उसके चित्तमें क्षण क्षण पानीके बहावकी तरह इष्टदेवकी मूर्ति ही प्रकाशित

होती रहती है। चित्तकी इस अवस्थाको एकाग्र अवस्था कहते हैं। चित्तकी यह एकाग्र अवस्थाही भगवानके भजनके अनुकूल है। चित्तमें एकाग्रता नहीं होनेसे भगवानमें एक निष्ट भक्ति नहीं होती है। हम सब संसारके भिन्न भिन्न कामोंके वीच वीचमें थोड़ा-सा समय भगवानके ध्यान और जापमें लगाते हैं। फिर उसी थोड़ेसे समयमें कैसी रंग विरंगी भावनायें हम सबोंके चित्तमें उठ आती हैं। इस तरह दिन पर दिन, महीनों पर महीने, वर्षों पर वर्ष हम काटते हुए कहते हैं, "इतने वर्षों से जाप ध्यान करते आरहे हैं, किन्तु भगवानको तो देखा नहीं। जान पड़ता है, भगवान हैं नहीं ? उनकी ये सब नाम, जाप, ध्यान और धारणायें वेकारको ढोंग हैं।"

हम सब सोचकर इसे नहीं देखते हैं कि जीवनके कितने से समयोंमें सरलतासे और आन्तरिकतासे भगवानको चाहा है। उनके अभावका अनुभव किया है। कितना समय एकाग्र चित्तसे भगवान के नाम जप और ध्यानमें लगाया है। चाहे लिखना पढ़ना हो, चाहे व्यापार ही हो, चाहे रसोई ही वनानी हो, किसी भी कामोंमें विना एकाग्रताके सिद्धि नहीं मिल सकती है। व्यवहारिक जगतमें ही जब विना एकाग्रता की सिद्धि नहीं मिलती है, तो आध्यात्मिक जगतमें एकाग्रताका कितना प्रयोजन है, इसे आसानीसे अनुमान किया जा सकता है। हम सब व्रजवासियोंके और अक्रूरके मनमें एकाग्रता देखते हैं। हृदय जब क्रूरतासे रहित हो जाता है, तब उस सरल हृदयमें अश्रद्धा भी नहीं रहती है, संशय, अहंकार और अभि-मान भी नहीं रहते हैं। कंस रूप अभिमान या अहंकारसे छुटकर

साधक जब अगाध श्रद्धा तथा अटल विश्वाससे अक्रूरकी नाईं पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भगवानकी ओर आगे बढ़ता जाता है; उस समय उसके चित्तमें श्रीकृष्ण भगवानको छोड़कर दूसरी कोई भी चिन्ता नहीं उठती है। अक्रूर जिस प्रकार व्रजधाममें पहुंचकर श्रीकृष्णके चरण चिन्होंको देखकर आनन्दसे भर गये थे। उसी प्रकार सरल हृदयवाले एकमात्र भगवत्परायण साधक ही, साधनाके मार्गमें आगे बढ़ते हुए, भगवानकी अनुभूतियोंका आभास पाते हुए, आनन्दका स्वाद लेते रहते हैं। अन्तमें वे भगवानके चरणोंके निकट पहुंच जाते हैं। उस समय स्वयं भगवान ही उनके कर्तृत्व और भोक्तृत्वरूप अभिमान या अहंकारको पूरी तरहसे हटा देते हैं। सरलता या कोमलताकी पराकाष्टा नहीं होने से भगवानका साक्षात्कार नहीं होता है। इस विषयमें वेदका कहना है कि :—

"तस्माद् ब्रह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्। बाल्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्य अथ मुनिः। अमौनं च मौनं च निर्विद्य अथ ब्राह्मणः।"

भगवन्निष्ठ साधक जब पुत्रैषणा, वित्तैषणा, और लोकैषणाको छोड़कर भगवानके शरणापन्न होते हैं, तब वे निश्चित रूपसे समझ पाते हैं कि वेद, तर्क एवं गुरु (आचार्य) के उपदेशोंसे भगवानके विषयका केवल परोक्ष ही ज्ञान किया जा सकता है। भगवानको स्वयं पानेके लिये एवं उसकी अपरोक्षानुभूति पानेके लिये बालककी नाईं सरल हृदयसे उसका शरण गहना होगा। इसीलिये वहां कहा है—

"बाल्येन तिष्ठासेत्" अर्थात् सरल हृदय बालक-की नाईं साधक जब भगवानको मनन करनेमें जुटा रहता है, तब उसके सरल हृदयमें सच्चित् आनन्द-घन श्री कृष्ण भगवानकी अपरोक्षानुभूति होती है। साधकका अन्तर और बाहर तब आनन्दके रससे भरपूर हो जाता है। उस समय वही साधक या मुनि बराबर भगवत्मनन शील होते हैं। किसीके भी साथ भगवानकी बातोंको छोड़कर दूसरी ओर किसी सांसारिक बातोंको नहीं करते हैं। बराबर ही एक अनिर्वचनीय आनन्द रसमें डूबे रहते हैं तथा मौन रहते हैं। बादमें उनका वह मौन भाव भी चला जाता है। उसके बाद उनके पास मौन एवं अमौन दोनों ही हेय हैं, और उपादेय कुछ भी नहीं रहता है। सर्वत्र ब्रह्म-दर्शन होनेसे वे साधक उस समय ब्राह्मण हो पड़ते हैं। उस समय वे ब्राह्मण क्या करते हैं, इस विषयमें वेद कहते हैं—

"तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः।
नाणुध्याद्बहून् शब्दान् वाचोविग्लापनंहितत् ॥"

भगवानके आनन्द रूपकी जब अपरोक्षानुभूति होती है, तब साधकके अन्दर और बाहरमें एकमात्र आनन्द रूप तथा अमृत रूप भगवानका ही दर्शन होता रहता है। उस समय उनके लिये शास्त्र चर्चा या कोई दूसरी बातोंका बोलना भी कष्ट कर होता है। इसीसे हम सब देख पाते हैं कि अक्रूरजी कंसकी राजधानीसे निकलकर जब व्रजधाममें श्री कृष्ण भगवानके पास जा रहे थे, उस समय उनके चित्तमें श्री कृष्णको छोड़कर दूसरोंका कोई भी स्थान नहीं था।

अक्रूर या सरलताको छोड़कर दूसरा कोई भी ॐ कृष्णको मथुरामें लाकर कंसरूप अहंकार या अभिमानको मिटानेमें समर्थ नहीं हो सकता है। हम भागवत्में पाते हैं कि केवल अक्रूर ही श्री कृष्ण और बलरामको रथपर बैठाकर मथुराकी ओर आगे बढ़ रहे हैं। वायुके समान जाने वाले रथके ऊपर बैठे श्री कृष्णसे ठहरनेको कह कर अक्रूर स्नान एवं सन्ध्या करनेके लिये यमुनामें ढुक पड़े। यमुनामें डुबकी लगाते ही अक्रूरने देखा कि श्री कृष्ण और बलराम यमुनामें डुबे हुए हैं। जलसे निकल कर रथकी ओर देखने पर देखा कि श्री कृष्ण और बलराम रथपर ही बैठे हैं। फिर डुबकी देने पर देखा कि चराचर जगत् द्वारा पूजित, सर्व शक्तिमान विष्णुरूप धारी भगवान श्री कृष्ण जलमें हैं। इस दर्शनसे अक्रूर आनन्दमें विभोर हो पड़े और गद् गद् चित्तसे बोलने लगे—

"नतोऽस्म्यहं त्वाखिल हेतु हेतुं,
नारायणं पुरुषमाद्य मव्ययम् ॥"

—भा० १०।४०।१

हे सभी जीवोंके आश्रय! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगतके आप आदि कारण हैं। आप ही पूर्ण रूपमें सभीके अन्दर और बाहर व्याप्त हैं। आप ही सर्व देवमय हैं। इसीसे सभोकी पूजा आपमें ही जाकर पहुंचती है। आप ही परा गति हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन चारोंकी व्यूह रचना कर, आप जीव देहमेंक्रीडा कर रहे हैं। दुष्टके संहारक आपको नमस्कार है।

भगवत्कृपासे अक्रूरका हृदय दीव्य ज्ञानसे प्रकाशित हो गया। अहंता और ममता ही जो हम सबोंका स्वरूप है, वह भगवान श्रीकृष्णको नहीं जानने देता है। अक्रूरने इसे अच्छी तरह अनुभव करना आरम्भ कर दिया। स्त्री, पुत्र, घर, कुटुम्ब, परिवार आदि सभी जगत ही अक्रूरके पास स्वप्नकी तरह दीख पड़ा। अक्रूरने साफ-साफ अनुभव किया कि मनुष्य अनित्य कर्मके फलसे दिनोंदिन बढ़ने वाले दुःखरूप संसारमें सुख जानकर, इस प्रकारके विपर्यय और भूलकी समझ द्वारा मोहित होकर परम प्रेमास्पद अपने स्वरूप परमात्माको नहीं जानता है। पानीके भ्रमसे मृगतृष्णाके पीछे पीछे दौड़ता हुआ; वह प्यास न बुझा कर धीरे धीरे उसे और बढ़ाता ही है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य भ्रान्त ज्ञानके वसीभूत होकर असत्य को सत्य समझता है। जन्म मृत्युके गढ्ढेमें गिरकर दुःखही भोगता रहता है। संसारका मिथ्यापन निश्चय ही अक्रूरके हृदयमें दृढ़ रूपसे जम गया। उन्होंने स्पष्ट जान लिया कि परमात्मा पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को छोड़कर जगतकी कोई भी स्वतन्त्रसत्ता नहीं है। अक्रूरजी अनन्या भक्ति द्वारा इस प्रकार भगवत्साक्षात्कार पाकर फिर रथपर बैठे। सामतक कृष्ण और बलरामको लेकर मथुरा पहुंच गये।

श्रीकृष्ण और बलरामके साथ अक्रूरके मथुरा प्रवेश करने पर, मथुराकी जनता एक टक श्रीकृष्ण और बलरामको देखने लगी। इधर नन्द आदि गोपगण पहले ही मथुराके पासकी झाड़ियोंमें बैठ कर श्रीकृष्ण और बलरामजीके आनेकी बाट जोह रहे थे। अक्रूरजी के रथके वहां आनेपर श्रीकृष्ण और बलराम उतर पड़े। दोनोंने

अक्रूरजीसे कहा कि आप घर जाइये; हम सब मथुराकी शोभा देखते हुए रंगमञ्चमें जायंगे। थोड़ी देरके लिये भी श्रीकृष्णका साथ छोड़ना अक्रूरके लिये कठिन हो गया था। इसलिये बार बार अक्रूरजी श्रीकृष्णसे अपने साथ घरपर जानेका आग्रह करने लगे। श्रीकृष्णजीने किन्तु मीठे शब्दोंमें आश्वासन देते हुए, कहा कि वे कंसको मार कर बलरामजीके साथ उनके घरपर पहुंचेंगे। कृष्ण द्वारा घर जानेकी आज्ञा पाकर अक्रूरने कहा था—

"देव देव जगन्नाथ, पुण्य श्रवण-कीर्तन।
यदूत्तमोत्तम श्लोक, नारायण नमोऽस्तुते ॥

—भा० १०।४०।१६

आप ब्रह्मा-विरञ्चिसे पूज्य हैं। आपको नमस्कार है। आज मथुरापुरी पवित्र तथा पुण्यमय हो गयी। आपकी इतनी करुणा है कि जिस मथुरामें कंसकी नाईं दुर्वृत्त वास कर रहा है, वहां आप आज स्वयं आकर पवित्र कर रहे हैं। क्यों नहीं करेंगे ? आप जो जगतके नाथ ठहरे। सभी जीवोंके आश्रय ठहरे। आपके श्रवण कीर्तन अनन्त पापोंको दूर हटा कर जीवको पवित्र बना देता है। हे शरणागत पालक ! आपका नमस्कार है। श्रीकृष्णको इस प्रकार नमस्कार कर अक्रूर मनमार कर घरकी ओर गये। कंसको श्रीकृष्णके आनेका समाचार देकर अक्रूर अपने घरमें चले गये।

चित्त विशुद्ध होनेपर, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भगवानकी अपरोक्षानुभूति होने लगती है। चित्त विशुद्ध होता है, या नहीं इस विषयको

जाननेका एकमात्र उपाय यही है कि जब जप ध्यान या कीर्त्तन किया जाय तब उस समय मनमे इष्टदेवके अतिरिक्त और कोई दूसरी चिन्ता आती है, या नहीं इसे लक्षमें रखना चाहिये। भगवानके जप, ध्यान और नाम कीर्त्तनके समय जिसके चित्तमें जिस परिमानमें अन्य विषयोंकी चिन्ता कम उठे; उसका चित्त उतने ही परिमानमें शुद्ध हुआ, ऐसा समझना चाहिये। सत्व गुण प्रधान साधक भगवानकी ओर जब अग्रसर होते हैं, तब उनके चित्तमें भगवानके सम्बन्धमें किसी भी प्रकारका संदेह नहीं उठता है। जैसा कि अक्रूर कंसके द्वारा आदेश पाकर व्रजधामकी ओर आगे बढ़े थे और एक बार भी नहीं सोचा था कि श्रीकृष्ण भगवानसे उनकी भेंट होगी या नहीं। कंसका अनुचर मानकर उनका विनाश भी हो सकता है। किस रास्तेसे व्रजधाम जाना होगा। रास्तेमें कोई वाधा आयगी या नहीं ? ये सब चिन्तायें अक्रूरके हृदयमें विलकुल ही नहीं थीं। परमेश्वरमें अर्पित चित्तके साधक कभी नहीं सोचते हैं कि वे क्या खायेंगे। कौन उन्हें आहार देगा। भगवानसे साक्षात्कार होगा या नहीं। बिमार होनेपर उसे कौन संभालेगा। ये सब व्यर्थकी चिन्तायें उनके हृदयमें थोड़ी देर भी नहीं ठहरती हैं। भगवान मिलेंगे ही—ऐसा दृढ़ विश्वास उनमें अटल रहता है। गुरू आचार्य या शास्त्रोंने जो भी रास्ते दिखाये हैं, उनपर उनकी श्रद्धा अत्यन्त गम्भीर और दृढ़ रहती है। अपने शरीरके सुखकी चिन्ता उन्हें नहीं होती है। वे अपने मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और स्थूल देहको एवं इन सबोंकी सारी चेष्टाओंको भगवानके चरणोंपर अर्णण किये रहते हैं। उनका

कर्त्तव्य पूरा हो गया है। इस समय इस शरीरको रखना या नहीं रखना भगवानके हाथ है। इस प्रकार शरणागत चित्त होकर साधक जब इष्टके ध्यानमें संलग्न होते हैं, तब उनके चित्त निर्मल होने लगते हैं। उसी निर्मल चित्तमें परमेश्वरकी अरोक्षानुभूतिका निदर्शन अनुभवमें आने लगता है। वेदने कहा है—

"नीहार-धूमार्क निलानलानाम्,
खद्योत-विद्युत-स्फटिक शशीनाम्।
एतानिरूपाणि पुरः सराणि,
ब्रह्मण्यभि व्यक्ति-कराणि-योगे॥"

साधक ध्यान करते करते यदि कुहर, धूम, अग्नि, सूर्य, जुगनू, विजली, स्फटिक, चन्द्रमा आदि देखते हैं। तब समझना चाहिये कि वे ठीक रास्तेसे जा रहे हैं। साधनाकी पहली राह पर चलनेकी प्रवृत्ति उनमें हुई है। अक्रूर जैसे ब्रजधाम में पहुंचते ही श्रीकृष्णके चरण-चिन्होंको देखकर आनन्दमें अधीर हो पड़े थे, साधक भी उसी प्रकार भगवानकी अपरोक्षानुभूति सूचक सभी चिन्होंको जितना ही देखते रहते हैं, उतना ही आनन्दसे परमेश्वरके साक्षात्कारके लिये व्याकुल हो उठते हैं। उसी समय उनके चित्तमें वास्तविक प्रवल वैराग्य होता है और इस अवस्थामें उन्हें शीघ्र ही भगवत्साक्षात्कार होता है। अक्रूरने जिस प्रकार यमुनाके पानीके अन्दर अनन्त शक्ति मान सर्व व्यापी विष्णुरुपी परमेश्वर भगवान श्रीकृष्ण

को एवं रथके ऊपर बैठे ब्रजबिहारी कृष्णका दर्शन किया था। साधक भी उसी प्रकार अपने शरीर रूप रथ पर निर्मल हृदयके गम्भीर तहमें सभी सौन्दर्यके आधार सच्चिदानन्दघन दिव्य ज्योतिर्मय अपने इष्ट मूर्तिका दर्शन करते हैं। भगवत्की कृपासे इसे भी स्पष्ट समझ सकझते हैं कि उनके हृदयकी वही मूर्ति वही सत्स्वरूप, वही चैतन्य स्वरूप, वही आनन्द स्वरूप परमेश्वर निखिल विश्वके अन्दर और बाहर व्याप्त होकर, सत्ता और प्रकाश देकर समस्त जगत्को प्रकाशमान करते हुये; अन्तर्यामीके रूपमें विराजमान हैं। अनन्य चित्त साधककी उस समय सुषुम्नाका द्वार खुल जाता है। ब्रह्म ग्रन्थी, विष्णुग्रन्थी तथा रूद्रग्रन्थी धीरे धीरे फट जाती है। उस समय भगवानकी कृपासे वे भगवानकी विभूतियोंका दर्शन कर आनन्दके सागरमें डूब जाते हैं।

अक्रूरको विदा करते हूए श्रीकृष्णने बलराम और अनान्य गोपोंके साथ मथुरामें प्रवेश किया। मथुरावासी सभीने पहलेसे ही सच्चित्-आनन्दघन प्रेममय श्रींकृष्णके अलौकिक लीलाओंको सुन रक्खा था। इस समय उनकी बहुत दिनोंकी लालसासे श्रीकृष्ण मथुराके सड़कों पर चल रहे हैं। इस बातको सुन सुनकर मथुरावासी बूढे जवान औरत मर्द दौड़ पड़े। नागरिकगण उनके ऊपर फूल फेंकने लगे। क्या स्त्री और क्या मर्द सभीने अपने भोग विलासको छोड़कर अनन्यचित्त हो, श्रीकृष्ण भगवानको ही केवल देखते हुये आनन्दके सागरमें डूब गये।

मनुष्यका अपना शरीर ही मथुरा पुरी है। मथुराका वास्तविक नाम मधुरापुरी है। मनुष्यका अपना देह ही मधुस्वरूप है। आनन्द स्वरूप है। अमृत स्वरूप है। परमात्मा सच्चित्-आनन्द घन श्रीकृष्ण इसमे नित्य विराज रहे हैं। हम सबोंका अहंकार देहात्माभिमान, पुत्र, कलत्र, धन, प्रभृति विषयोंके अभिमान इस अमृत स्वरूप, आनन्द स्वरूप, पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका साक्षात्कार नहीं होने देता है। जिस विद्याके द्वारा इस मधुरूप कृष्णको पाया जा सकता है, उसी विद्याका नाम मधु विद्या है। वृहदारण्यक—उपनिषद्के मधु-ब्राह्मणमें इस मधु-विद्याका वर्णन विस्तारसे हुआ है। इस शरीररूप कलश सागरके मथने पर अमृतस्वरूप श्री कृष्ण भगवानके साक्षात्कारसे जीवनमें कृत्य कृत पाया जा सकता है। महर्षि व्यास जीने महाभारतके आदि पर्वमें दस इन्द्रिय, पञ्च प्राण एवं मनस्वरूप कलावान इस शरीररूप कलशके सागरको मथकर अमृत स्वरूप भगवान श्रीकृष्णको पाकर कैसे अमर बना जा सकता है, इसका उपाय विस्तारसे बताया है। पहले दो लकड़ियोंको घीसकर आग निकाल कर उसमें अपने अपने इष्टके उद्देश्यसे आहुति देकर इच्छा की पूर्तिकी जाती थी। इन दो लड़कियोंमें से यह देह ही एक लकड़ी है। प्रणव या ॐ कार या कोई अन्य वीज मन्त्र दूसरी लकड़ी है। इनमें मन्त्रोंके जाप मनन ध्यान और कीर्तन मानो रगड़न है। ध्यान रूप रगड़न द्वारा मूलाधारकी आगको जिसे ज्योति भी कही जाती है, और कुण्डलनी भी कही जाती है ; उसे प्रकाशमें ले आना होगा। इस आग या ज्योतिके प्रकाश होने पर ही सुषुम्नाका द्वारा

खुलता है। उसके बाद भगवानमें एक निष्ठ शरणागतको अपने आप ही ज्योतिष्ठोम याग, पशु याग एवं सोम याग पूरे होते हैं। यज्ञके फलस्वरूप स्वर्ग या निरतिशय आनन्द स्वरूप पुरुषोत्तम आनन्दघन श्रीकृष्णका साक्षात्कार होता है। वेदोंमें विस्तारसे यज्ञों का वर्णन किया गया है। उपनिषद्ने यज्ञ रहस्यके सम्बन्धमें उपदेश देते हुए कहा है—

"स्वदेह मरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्यान निर्मथनाभ्यासाद देवं पश्येन्निगूढ़वत् ॥"

वेद, उपनिषद्, दर्शन, और पुराणोंमें सर्वत्र ही, किन उपायोंसे संचित् आनन्द घन पुरषोत्तम श्रीकृष्ण भगवानका साक्षात्कार हो सकता है, इसे दिखाया गया है। श्रीकृष्ण भगवानमें एक निष्ठ शरणागत अनन्य चित्त साधकका भगवानके नाम जाप, भगवानके ध्यान द्वारा और निष्काम कर्म द्वारा चित्त शुद्ध होनेपर, साधक अपने शिरके अन्दरमें अर्थात् सहस्त्रारमें विमल आनन्दका अनुभव करते हैं।

उसी विमल आनन्द मे इन्द्रियां विषय भोग से हटकर भगवान की ओर आकर्षित होती हैं। इन्द्रियां सुख पाकर ही तो विषयों की ओर भी दौड़ पड़ती हैं? साधक शिर के भीतरी भाग मे जो आनन्द पाते हैं, उसकी बराबरी किसी भो वस्तु विषय के आनन्द से नहीं हो सकती है। स्पर्श मणि मिलने पर जैसे कोई भी कानी कौड़ी के लिये नहीं तड़पता है, उसी प्रकार साधक के शिर-भाग मे इस

आनन्द का अनुभव होने पर इन्द्रियां अपने आप विषयों के आनन्द को छोड़ देती हैं। इन्द्रियां विषयों से अलग होने पर फिर विषयों की ओर नहीं दौड़ती हैं। प्राण आनन्द से भरपूर होकर स्थिर भाव धारण करता है। वाद मे वही आनन्द दिव्य ज्योति के रूपमे, हृदयके भीतरी तह मे, साधक के अपने इष्ट देवता के रूपमे। मूर्त हो उठता है। उस समय साधक की स्थूल विषय की वासना दूर हो जाती है। सूक्ष्म वासना किन्तु रह जाती है। उसके वाद उस स्थूल वासना का संस्कार भी दूर हो जाता है। अर्थात् सूक्ष्म वासना भी तब निर्मल हो जाती है। सूक्ष्म वासना के निर्मूल होने पर भी अहंकार रह जाता है। भगवान की कृपासे अहंकार अपने को प्रेम मय भगवानके विमल आनन्द मे भुला देता है।

इस प्रकार अहंकार के विलुप्त होने पर अस्मिता का ज्ञान रह जाता है। इस अस्मिता के ज्ञानका लोप होने पर अहंकार पूरी तरह से मूल के साथ अलग हो जाता है। भगवान की शरणागति भी तब पूरी हो जाती हैं!

श्री कृष्ण अपने सह वयस्कों और बलरामजी के साथ मथुरा के सड़कसेहोकर नगर की शोभा देखते देखते कंस के रंगमञ्च की ओर आगेबढ़ने लगे। श्री कृष्ण के आने का समाचार सुन कर मथुरा वासी सभी ने अपने अपने कामों को छोड़ श्री कृष्ण भगवान के मुख चन्द्र को देखने की लालसा भरे उत्सुक चित्तसे सड़क पर तथा उसके दोनो ओर की कोठाओं पर आकर इकट्ठे होने लगे।

दृष्ट्वा मुहुः श्रुत मनु द्रुत चेत सस्तम् ।
तत् प्रेक्षणोत् स्मित सुधोक्षण लब्ध मानाः ॥
आनन्द मूर्तिमुपगुह्य दृशाऽऽत्म लब्धम्,
हृष्य त्वचो जहुरनन्त मरिन्दमाधिम् ॥

भा० १०।४१।२८

श्री कृष्ण के रूप और सौन्दर्य की बातें, उनकी करुणा और पराक्रम की बातें मथुरा वासीगण पहले से ही सुनकर, कृष्णसे एक मन होकर, उन्हें देखने को अत्यन्त उत्सुक चित्तसे समय काट रहे थे। इस समय उनके वही चिरवाञ्छित सहास्यमुख आनन्द घन श्री कृष्ण भगवान स्वयं सामने आपड़े। इससे मथुरा वासियों के आनन्द की सीमा नहीं रही। उनकी सारी इन्द्रियां मानो आखों मे परिणत हो गईं। वे सब बिना पलक गिराये एक टक उस आनन्द घन की मूर्तियों को देख देख कर आनन्द से पुलकित हो गये। उन सबों की मानसिक उत्कण्ठा और मन की पीड़ाशान्त हो गई। बार बार स्वच्छ नीलम रत्न के समान श्री कृष्ण को देखकर उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। उनके मन मे होने लगा—

जनम अवधि हम रूप निहारिनु।
नयन न तिरपित भेल,
सोई मधुर बोल श्रवणहि सुननु।
श्रुति पथ परस ना गेल,
कत मधु यामिनि रहसे गंवायनु।
वुझनु ना कैसन केली,

लाख लाख युग हिया हिया राखनु

तबु हिया जूड़—नागेलि ।'

श्रीकृष्णके प्रेममे विभोर मथुराकी नर नारियोंने आत्मदान रूप श्रेष्ठ अर्घ द्वारा श्रीकृष्ण भगवानकी पूजा कर बादमे फल और फूल आदि द्वारा उनका यथोचित् सत्कार किया।

भगवानमे शरणागति, श्रीकृष्णमे आत्म समपर्ण जब होते हैं, तब साधकके मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, प्राण, इन्द्रियाँ रूप स्थूल देह पर्यन्त रूपान्तरित हो जाते हैं। जगत प्रकृतिका परिणाम है। प्रकृति सत्व रज और तमो मयी है। इसीसे प्रकृतिके सभी कार्य सत्वरज और तमो मय हैं। हम सबोंके मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकारभी सत्व, रज और तमो मय हैं। भगवानमे आत्म समपर्ण पूरा होने पर हम सबोंके अन्तःकरणका 'तम' भाग सत्-चित् आनन्द स्वरूप भगवानके 'सत्' स्वरूपमे बदल जाता है। 'तम' उस समय और 'तम' नहीं रहता है। तम उस समय शान्तहो जाता है। विकारविहीन 'सत्' पदार्थमे बदल जाता है। अन्तः करणके 'रज' का भाग अपनी सीमा को छोड़कर श्री भगवान की लीला की निर्मलतासे अपनी इच्छा शक्ति के केन्द्र चित् शक्तिमे, देखते देखते बदल जाता है। अन्तः करणके 'सत्व' का भाग भगवानके आनन्द स्वरूप अथवा आह्लादिनी शक्तिमे रूपान्तरित होता है। साधकका परिमित भाव दूर हो जाता है। उसका अपना काम मान कर कोई भी कर्म नहीं रहता हैं। उसकी इच्छा भगवान की इच्छाके साथ मिल जाती है। उस समय साधक अपने

अन्दर वाहर और सर्वत्र जगतके वीच केवल मात्र भगवानकी इच्छा काही फैलाव देखता है। उसके कर्तृत्व और भोक्तृत्वका अभिमान पूरा पूरा विलोप हो जाता है। एक अति उत्तम (जिसका वर्णन नहीं हो सकता) प्रकाशके आनन्द सागरमे वह डूब जाता है। उस समय साधक अन्दर, वाहर, नीचे, ऊपर, सर्वत्र और वरावर केवल सचित् आनन्द घन परमात्माका दर्शन करता रहता है। इस प्रकार प्रत्यक्षकी अनुभूति होनेके पहले भगवानकी मूर्ति का दर्शन होता है। जिस साधकको जिस मूर्तिके दर्शनकी इच्छा रहती है, भगवान उसी मूर्तिको धरकर साधकके सामने आते हैं। इस तरहकी अनुभूतिमें साधक का विभेद रहता है। उस समयभी उसके सत्व, रज और तम पूरी तरह सच्चिदानन्द नहीं होते हैं। साधकके चित्तका कोई कोई यही अंश भगवानमे अर्पित होता है, परन्तु मन, बुद्धि, और अहंकार का जो सत्वरज और तम अंश है, वह पूरी तरह भगवानमे समर्पित नहीं होता हैं। साधकने जव एक वारभी भगवनके चरणोंमें आत्म समपर्ण करनेका संकल्प कर लिया है, उनका शरण धर लिया है, तव भगवान स्वयंही उसके आत्म समपर्णको पूरा कर देते हैं। इसीसे हम सव देखते हैं कि श्री कृष्ण भगवानने मथुराकी सड़कों पर जाते जाते देख लिया कि एक धोवी वढ़ियां वढ़ियां कपड़ा लिए जारहा है। श्री कृष्णने उस समय उससे कहा—तुम इन सुन्दर कपड़ोंको हम दोनोंको दो, इससे तुम्हारा भला होगा। धोवी किन्तु श्री कृष्णकी वातोंको सुनकर विगड़ कर वोला - मै कंसका नौकर हूं। ये सव सुन्दर कपड़े कंसके लिये ले जारहा हूं। तुम सवोंकी तरह गंवार चरवाहे

छोकरे कभी ऐसे कपडे पहन सकते हैं। अगर जिन्दा रहना है तो जल्दीसे भागो, नहीं तो अभीही सरकारी आदमी तुम्हारी मरम्मत कर देंगें। श्री कृष्णने धोबीसे इस प्रकार कठोर बातोंको सुनकर उसी समय उसे मार डाला और उसके उन कपड़ोंमे से अच्छे अच्छे कपड़े लेकर दोनो भाइयोंने पहन लिया। धोबीके नौकर इधर ऊधर भाग पड़े। श्री कृष्ण के कुछ दूर और आगे बढ़ने पर परमभक्त एक दर्जीने आकर श्री कृष्ण और बलरामको अच्छे पहलवानोंके वेशमें सजा दिया। योद्धाके वेशमें सजकर श्री कृष्ण और बलराम सुदामा नामके एक मालीके घर जा पड़े।

सुदामा श्री कृष्ण और बलरामको देखकर प्रसन्न होकर उन दोनोंके चरणों पर गिर पड़ा। अत्यन्त प्रसन्नताके साथ अच्छे-अच्छे फूल मालोंसे उन दोनोंको सजा दिया। इस प्रकार दिव्य माले और कपड़ों से सज ध्वज कर श्री कृष्ण और बलराम सुदामाको वर देकर आगे बढ़ने लगे। कुछ दूर जाने पर श्री कृष्णने देखा कि एक स्त्री अनेक प्रकारके सुगन्ध भरे अङ्ग-राग को लेकर उनकी ओर आरही हैं वह स्त्री शरीरके तीन भागोंसे कुब्जा थी। भगवान श्री कृष्णने अङ्ग राग हाथमें लिए कुबड़ी (कुब्जा) से हंसते हुए पूछा—सुन्दरी ? तुम कौन हो ? अपने हाथोंका अङ्ग-राग हमे दो। इससे तुम्हारा परम कल्याण होगा। श्री कृष्ण भगवान को देख करही कुबड़ी मोह गई थी इस समय उनकी बातोंको सुनकर आनन्दसे छल छलाती हुई बोली—हे सुन्दर ! मेरा नाम त्रिवक्रा है। मैं कंसकी नोकरानी हूं। उन्होके लिये ये अङ्ग-राग लिये जा रही हूं। आज किन्तु मैं आपका दर्शन

कर धन्य हो पड़ी हूं। ये अङ्ग-राग आपके लिये ही ठीक है। ऐसा बोलकर कुबड़ीने अपनेही हाथोंसे कृष्ण और बलरामको अङ्ग-रागके लेपसे सजा दिया। भगवान श्री कृष्ण कुबड़ी पर कृपा परायण होकर अपने चरणोंसे उसके पांवके दोनो पंजे दबा लिये और अपने हाथों से उचकाकर दो अंगुलियोंको उसकी टोढ़ीमें लगाई एवं उसके शरीर को थोड़ा झटका दिया। उचकातेही उसके सारे शरीर सीधे और समान हो गये। वह उसी समय परमसुन्दरी हो पड़ी। कुबड़ी पर कृपाकर श्री कृष्ण बलरामके साथ कंसके धनुष यज्ञकी शालामें जा पहुंचे। रक्षकोंके रोकने पर भी कंसके उस विशाल धनुषको बायें हाथसे उठाकर खेलही खेलमें दो टुकड़े कर डाले। धनुष टूटनेके निनादसे कंस डरकर कांपते हुये, बारबार अपने अप शकुनोंको देखने लगा। धनुष-टूटनेके दूसरे दिन श्री कृष्ण और बलराम अपूर्व वेशमें सजकर कंसके रंग मंचके दरवाजे पर उपस्थित हुये। कुबलया पीड़ नामका हाथी उस दरवाजेकी रखवाली कर रहा था। श्री कृष्णने महावतसे हाथीको सरकानेके लिये कहा। महावतने उनकी बातोंकी अनसुनी करदी, किन्तु श्री कृष्णको मार डालने के उद्देश्य से उनकी ओर कुबल या पीड़को चलाने लगा। श्रीकृष्णने तब हाथीको उसकी सूँड़ पकड़कर धरतीपर पटक दिया। उसकी दाँतोंको उखाड़कर महावत और अन्यान्य कंसके अनुचरों का काम तमाम कर दिया। कृष्णने हाथमें दांत लियेही रंग मंचमें प्रवेश किया। श्री कृष्ण और बलरामको देखकर कंसका हृदय धड़कने लगा। कंसके दो पहलवान मुष्टिक और चाणूरने श्री कृष्ण को कुश्ती के लिये ललकारा। श्रीकृष्ण

और बलरामने क्रमशः मुष्टिक और चाणूरको दंगलमें आसानीसे मार डाला। इसे देख कंसके अन्यान्य बचे पहलवान डरके मारे भाग पड़े। कंस तब श्रीकृष्ण और बलरामको नगरसे बाहर करनेका, वसु-देव-देवकी और अपने बाप उग्रसेन को मार डालनेका आदेश देने लगा। कंसकी आज्ञाको सुनकर श्री कृष्ण क्रुद्ध होकर कंस जिस मञ्च पर बैठा था, उस पर चढ़ गये। कंस तब डर कर म्यानसे तलवार खींचकर श्रीकृष्णको मारना चाहा। श्रीकृष्णने कंसके बालोंको पकड़कर मञ्चसे नीचे फेंक दिया। साथ ही कूदकर उसकी छातीको धर दबोचा कंसका प्राण वायु निकल गया। कंसके भाइयों को कृष्णकी ओर दौड़ने पर कृष्णने अनायासही उन सबोंको मारकर मथुरा पुरी को निष्कन्टक और शान्ति मय कर दिया। उनपर स्वर्गसे फूल पड़ने लगे। पुरवासी सभी पुलकित होकर श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे।

भगवान श्रीकृष्णके चरित्रोंकी जितनी भी आलोचनाकी जाय, उतनाही हृदय एक आनन्दके रससे भींग जाता है। परमेश्वरके करुणाकी सीमा नहीं है। उनके दण्डित करने पर भी, उनके उस दण्डमें उनकी अपार कृपाही रहती है। मुनिवर मार्कण्डेयने इसीसे कहा है—

"केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य,
रुपञ्च शत्रु भयकार्य तिहारिकुत्र।
चित्ते कृपा समर - निष्ठुरताच दृष्ट्वा,
त्वय्यैव देवी वरदे भुवनत्रयेऽपि॥"

—चण्डी॥

भगवानके पराक्रमकी तुलना नहीं है। दूध पीने वाले बच्चोंके रूपमें उन्होंने कितने पराक्रमी असुरोंका वध किया है। जो दाम्भिक अहंकारी, धन ऐश्वर्यमें मत्त होकर निरीह जनगण पर अत्याचार करते हैं। भगवान उन सब नृशंस असुर-स्वभाववाले दुष्टाशयोंका नाश किस तरह करते हैं, इसे भगवान श्रीकृष्णकी व्रज और मथुरा की लीलासे अच्छी तरह प्रत्यक्ष होता है। भगवान ने कहा है "जिनके चित्त एकमात्र मुझमे निबद्ध हैं, मेरी ध्यान, पूजाको छोड़कर जो मुहूर्त भर भी जीवन नहीं रख सकते हैं, वे ही सतत प्रीति पूर्वक भजनशील साधकोंके निर्मल हृदयमें, मैं अवस्थान पूर्वक भास्वर ज्ञानरूप प्रदीप द्वारा; उनके हृदयके युग-युगके इकठ्ठे अज्ञान अन्धकारको दूर कर देता हूं और उन्हें वही ज्ञान, वही बुद्धि प्रदान करता हूं; जिसका अवलम्बन कर, वे हमें पानेमें समर्थ होते हैं। भगवानने और भी कहा है—

"नमेद्वेष्योऽस्ति, न प्रियः, ये भजन्तितुमां भक्त्या, मयिते तेषु चाप्यहम्।"

भगवान का कोई द्वेष्य अर्थात् शत्रु नहीं है। उनका कोई प्रिय भी नहीं है। जो उन्हें भक्तिके साथ भजता है, वह उनमें ही निवास करता है। वे भी सर्वदा उन सबोंके हृदयमें ही रहते हैं। भगवानने और भी कहा है—

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते, तांस्तथैव भजाम्यहम्।"

भगवानको जो जिस रूपमें भजन करते हैं: भगवान उन सबों

पर उसी रूपमें अनुग्रह करते हैं। भगवानकी उपासनाके पहले स्तरमें परमेश्वरके साथ एक सम्बन्ध और एक भावकी रचना करनी चाहिये। भाव मात्र ही रसस्वरूप है। यह रस आनन्दका एक विकाश है। इस आनन्दकी एक कण भी पाकर सभी प्राणी तृप्त और कृतार्थ हो पड़ते हैं। विश्व वासी इस आनन्द स्वरूप भगवानको अपने हृदयमें उपलब्धि करनेके लिये लालायित रहते हैं। विश्व-वासी जानमें या आजनमें इस आनन्द स्वरूप भगवानको पानेके लिये दौड़ रहे हैं। मनुष्य इस रसस्वरूप, आनन्द स्वरूप भगवानको पानेके लिये उनके साथ जो सम्बन्ध जोड़ता है, वह सम्बन्ध भी रसमय है। यह रसमय सम्बन्ध कभो मधुर, शृङ्गार, सख्य; वात्सल्य, दास्य आदिके रूपमें होता है और कभी रौद्र, वीर हास्य, बीभत्स और शान्तरूपमें होता है। शत्रु अथवा मित्र जो भी सम्बन्ध भगवानके साथ स्थापित क्यों न हो, भगवान उसी सम्बन्ध-का आश्रय कर जीवके प्रति करुणा करते रहते हैं। श्रीकृष्ण-चरित्रमें हम इन्हें स्पष्ट भावसे देख चुके हैं। पूतना आदि आसुरिक-स्वभाव के मनुष्य गणोंने भगवानको शत्रुरूपमें देखा था। उन सबोंके मनमें भगवानके अनिष्ट साधनको छोड़कर दूसरी कोई भी चिन्ता नहीं थी। भगवानमें एक निष्ठ साधकके हृदयमें जिस प्रकार भगवानका प्रेम होता है। भगवानके इष्ट साधनको छोड़कर दूसरी किसी भी चिन्ताका उसमें उदय नहीं होता है, उसका चित्त जिस प्रकार सर्वदा भगवानमें अनुरक्त रहता है, उसी प्रकार जो सब भगवानके विद्वेषी हैं, जो भगवानको द्वेष्य मानकर शत्रु समझते हैं, उन सबोंका चित्त

भी सर्वदा उसी प्रकार भगवानमें आसक्तरहता है। भक्तके विशुद्ध चित्तमें रहते हुए ; उसके अज्ञान अन्धकारको दूरकर भगवान जिस प्रकार उसे अपना लेते हैं ; उसी प्रकार जो शत्रु भावमें भगवान को देखता है, उसके चित्तमें भी भगवानको छोड़कर अन्य कोई चिन्ता नहीं रहनेसे, भगवान उसके चित्तके मैलोंको दूर कर, उसे भी अपना लेते हैं।

निर्मल हृदयवाले भगवद्भक्तोंके चित्तमें भगवानकी अपरोक्षानुभूतिकी बाधा नहीं हैं, इसीसे उसे सहजमें ही भगवानका दर्शन होता है। जिसके चित्तमें द्वेष्य भाव, रौद्र भाव, वीर भाव और बीभत्स भावोंकी प्रबल बाधा उठती है, उसी चित्तको निर्मल करनेके लिये उन-उन बाधाओंको दूर करनेके लिये अधिक शक्तिकी आवश्यकता है। उस समय भगवान उसे सभी तरहसे भिखारी बनाकर सभी दर्पोंको चकना चूर कर अपना लेते हैं। कंसने जब सुना था कि देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न सन्तान उसका मारक होगा। उसी दिनसे उसका चित्त भगवानमें निबद्ध हो गया था। श्रीकृष्ण भगवानके मथुरा जाने पर, कंस बराबर उन्हें ही देखा करता था। अन्त में उसके सभी दर्पको चूरकर श्रीकृष्ण भगवानने उसे ऊँचे मचानसे धरती पर पटक कर मार डाला।

श्रीकृष्ण भगवान जब शिशु थे, उसी समयसे कंस उन्हें मार डालनेकी अनेक चेष्टा करते हुए, असफल हो पड़ा था। श्रीकृष्ण जब किशोर अवस्थामें पहुंचे, तब भी कंसने बहुतसे पराक्रमी अपने अनु-

चरोंको व्रजमें भेजकर श्रीकृष्णको मारनेके लिये कोई कम चेष्टा नहीं की थी। उसकी किन्तु सभी चेष्टायें व्यर्थ हुईं। हिमालय पर ढेला फेंकनेसे जैसे हिमालयकी कोई क्षति नहीं होती है, किन्तु ढेला ही चूर-चूर हो जाता है। उसी प्रकार कंसके भेजे हुए बलवान दानव गण अनेक मायाको फैलाकर भी भगवान श्रीकृष्णको जरा भी हानी नहीं पहुंचा सके। उलटे वे सब स्वयं ही मर मिटे। इन सबों से भी कंसको ज्ञान नहीं हुआ। दम्भ, अहंकार और कलुष-कालिमा जब चित्तको घेर लेती है, तब मनुष्यका विवेक या विज्ञान लुप्त हो जाता है। पाप उस समय मनुष्यके मनको धीरे-धीरे नीचे उतार देता है।

व्रजधामके किशोर श्रीकृष्णकी हत्या करनेकी सभी प्रयत्नोंको विफल होता देख कंसने श्रीकृष्णको मथुरामें लाकर मारनेके विचारसें धनुर्यज्ञका आयोजन किया था। भगवान श्रीकृष्णने भी मथुरा आकर साम, दाम, दण्ड और नीतिका अवलम्बन कर कंसके बलको घटाने पर भी, कंस किन्तु अपनी दुष्ट धारणासे नहीं बदला। रंग-स्थलमें श्रीकृष्णकी हत्या करनेकी चेष्टा होने पर ; दर्पहारी भगवानने कंसकी उस चेष्टाको व्यर्थ कर दिया। अन्त में कंसके मचानपर चढ़कर उसके बालोंको खींचकर उसे जमीनमें धरतीपर पटक दिया। कंस इससे मर गया। कंस एवं उसके पापाशय कर्मचारी गणोंके नाश होने पर ; भगवान श्रीकृष्णने कंसके पिता उग्रसेनको मथुराके सिंहासन पर फिरसे बैठाया। उग्रसेन मथुराके सिंहासन पर बैठनेको पहले राजी नहीं हुए। इसपर भगवानने उनसे कहा कि—

"मयिभृत्य उपासीने, भवतो विबुधादयः ।
वलिं हरन्त्य वनताः, किमुतान्ये नरा धिपाः ॥"

भा० १०।४५।१४

आप जरा भी मत घबड़ाइये। नौकरकी तरह मेरी सेवा करते रहनेसे देवता भी शिर झुकाकर आपकी आज्ञाका पालन करनेमें अपनेको उपहार चढ़ायेंगे। दूसरे सब राजाओंकी बातें मैं क्या बताऊँगा।" कृष्ण द्वारा आश्वासन पाकर उग्रसेन फिरसे मथुराके राज्य सिंहासन पर बैठ गये।

श्रीकृष्ण और बलराम द्वारा सभी प्रकारसे सुरक्षित होकर मथुरावासी सबोंके मनोरथ पूर्ण हुए। उनके सभी सन्ताप दूर हो गये। घरमें रहकर ही वे सब निरर्गल शान्ति और निरतिशय आनन्दका अनुभव करने लगे।

"कृष्ण-सङ्कर्षण भुजैर्गुप्तालब्ध मनोरथाः।
गृहेषुरेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥"

भा० १०।४५।१७

मनुष्य मोहमें पड़कर असत्यको सत्य, अनित्यको नित्य, अपवित्रको पवित्र तथा दुःखको सुख मान बैठता है। स्त्री, पुत्र, धन, दौलत, यश, मान, देह और गेहको, वह सुख समझकर उसमें लिपट जाता है। उसके अपने वास्तविक-स्वरूप सच्चित् आनन्दघन परमेश्वरकी चिन्ता भी मनमें नहीं उठती है। जब वह संसारके घात प्रतिघातसे ताड़ित होता है, तब वह पहले जिसको सत्य समझकर, नित्य समझ

कर, सुखप्रद समझ कर जानता था, वेही सब वस्तु उसकी हंसी उड़ा-उड़ाकर उसे छोड़ती जाती हैं और उसके दुःखका कारण हो पड़ती हैं, तब उस मानवका हृदय एक-आश्रयकी खोजमें व्यस्त हो जाता है। उसी समय उसका चित्त थोड़ा थोड़ा परमेश्वरकी ओर आगे बढ़ता है।

संसारकी असारता, संसारके झूठेपनका निश्चय जितना भी दृढ़ होता जाता है, मनुष्यका मन उतना ही अपने स्वरूप परमेश्वरकी ओर दौड़ता है। इस प्रकार वह जब सभी भूतोंके आश्रय परमेश्वरके अभय पदका शरण गहता है, तब उसका चित्त निर्मल होता जाता है। उस समय वह अपने हृदयमें भगवानके स्पर्शका अनुभव पाता है। संसारका कोई भी प्रलोभन उसे और पहलेकी तरह लुभा नहीं पाता है। संसारके सुख दुःख उसके भगवन्मुखी मनको विचलित कर अन्य विषयकी ओर नहीं लाने पाते हैं। संसारके घात प्रतिघातोंमें अविचलित होकर मनुष्य जब शरीर मन और वाणीसे भगवानके अभयपदमें शरण लेता है, उस समय उसके उसी भगवन्मुखी चित्तमें परमेश्वर आकर जन्म लेते हैं। अर्थात् साधककी भगवानमें शरणागति आरम्भ होती है। भगवानने जो उसे अभय दिया कि कोई विपत्ति, कोई बाधा, कोई विघ्न और उसे भगवानसे अलग नहीं कर सकते हैं। किसी भी प्रकार उसे लक्ष्यसे नहीं डिगा सकेंगे। इसी बातकी साक्षीके लिये भगवान उसकी इष्ट मूर्तिमें उसके सन्मुख उपस्थित होते हैं। उस समय साधक भगवानकी आज्ञाको स्पष्ट सुन पाता है एवं उनके निर्देशके अनुसार वह जीवन यात्रामें आगे बढ़ता है।

भगवानमें एकान्त शरणागत साधक के सभी भारको भगवान स्वयं ग्रहण करते हैं। साधकके चित्तसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य प्रभृति जितने भी राजसिक और तामसिक प्रवृत्तियां है, उन्हें धीरे-धीरे हटाकर वे साधकके चित्तको विशुद्ध और निर्मल बना देते हैं। निर्मल हृदयका विशुद्ध सत्व साधक तब अपने हृदयमें अपने इष्टदेवकी मूर्तिको देखकर कृतार्थ होता है। उस समय भी किन्तु उसमें सात्विक अभिमान रह जाता है। वह उस समय उसी सात्विक अभिमान से युक्त होकर भगवानके आनन्द रसका स्वाद लेता है।

साधनाके इस स्तरके भेद-अभेद रूपमें भगवानकी अपरोक्षानुभूतिको साधक अपने चित्तमें अनुभव करता है। बादमे साधकके चित्तसे अभिमानको भगवान पूरी तरहसे हटाकर साधकके समुदाय चित्त पर पूर्ण रूपसे अधिकार कर लेते हैं। अहंभावके अभिमानरूप हृदयको ऊँचे मचानसे दूर गिराकर भगवान श्रीकृष्ण हृदयके राजा हो पड़ते हैं। जो वुद्धि इतने दिनों तक अहंकार और इन्द्रियोंका वस मानकर शोक, मोह, दुःख और दैन्यसे अभिभूत थी; वही वुद्धि इस समय भगवत्स्पर्शसे निर्मल हो जाती है। साधककी तब "बुद्धिर्विनष्टा गलिताप्रवृत्तिः" हो जाती है; अर्थात् सच्चित् आनन्द घन श्रीकृष्णके स्पर्शसे साधकमे उस समय कर्तृत्वका अभिमान और भोक्तृत्वका अभिमन नहीं रहता है। वह तब और कर्म नहीं करना चाहता है। केवलआनन्दके रसमें निमग्न रहनेको उसके बहुत दिनोंका अभ्यास जन्य संस्कार उसे ले जाता है। इसीसे पहले उग्रसेनने

मथुराके राजा होनेमें अनिच्छा दीखाई थी। भगवानकी कृपासे साधकका तत्व ज्ञान दृढ़ होने पर उसके वासना-समूह क्षय होते हैं। चित्तका विशिष्ट परिक्छेद विनाश होता है। उस समय वही तत्व ज्ञानी सच्चा भगवद्भक्त साधक देखता है कि भगवानकी लीला-शक्ति उसके भीतरसे क्रीड़ा करती हुई जा रही है। उन सब क्रियाओंसे तव और उसमें कर्तृत्व बुद्धि और भोग बुद्धि नहीं रहती है। अत-एव लोकमें उसे कर्म करते देखने पर भी, वह कोई कर्म नहीं करता है। कहा गया है कि इसीसे भगवान श्रीकृष्णके द्वारा उग्रसेनको मथुराका राजा बनाने पर भी, उग्रसेन समझ गये थे कि वह राजा नहीं हैं। समस्त जगतके सम्राट् स्वयं भगवान श्रीकृष्ण आकर उसके देह रूप मथुरा पुरीके हृदय-सिंहासन पर विराज-मान हुए हैं। भगवद्भक्त घरमें रहकर भी, कर्म करके भी, योगियों के लिये भो दुर्लभ, निराविल शान्ति पा लेते हैं।

कंस विनष्ट हो गया। कंसके सब भाई और नौकर चाकर भी एक एक कर मार डाले गये। कंसकी स्त्रियोंके दुःखित होनेपर भी भगवत्कृपासे उन सबोंके चित्त विशुद्ध हो गये थे। वे सव कहने लगीं—

"अना गसांत्वं भूतानाम्, कृतवान द्रोह मुल्बणम्।
ते नेमां भो दशां नीतो भुतध्रुक्कोलभेतशम्॥"

—भा० १०।४४।४७

हा नाथ! आपने निरपराध प्राणियोंको कितना उत्पीड़ित

किया था। उसीसे आपकी आज यह दशा हो गई। जो लोग प्राणियोंके उत्पीड़क होते हैं, वे कभी भी शांति नहीं पा सकते हैं।

"सर्वेषामिह भूतानामेषहि प्रभवाप्ययः।
गोप्ताच तदवध्यायी नकश्चित् सुखमेधते ॥"

—भा० १०।४४।४८

ओर यह जो हाथमें तलवार लिये श्यामसुन्दरकी मूर्ति हम सबों के सन्मुख खड़ी है; यही जगन्नाथ हैं। यही जगतकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने वाले हैं। यही सभी जीवोंकी अन्तरात्मा हैं। सभी जीवोंको कष्ट देनेसे इन्हींका अपमान होता है। ईश्वरकी उपेक्षा कर सब जीवोंकी अन्तरात्माको कष्ट देकर, कभी भी सुख नहीं पाया जा सकता है।

भगवान बुद्ध, भगवान शंकराचार्य, रामानुज, रामानन्द, कबीर, दादू, रामदास, श्री श्री महा प्रभु चैतन्य आदिके रूपमें भगवानने बार बार भारतवर्षमें अवतार लेकर भारत वासियोंको सावधान कर दिया है। "मनुष्य होकर मनुष्यकी अवहेलना मत करो। मनुष्य होकर मनुष्यको उत्पीड़ित मत करो।" भारत वासियोंने किन्तु उनके इन सावधानकी वाणियोंको नहीं माना है। उसके फलस्वरूप आज भारत वासियोंकी यह दुदशा है। जो सब मनुष्य तथा कथित ऊच्चश्रेणीके मनुष्यों द्वारा अपमानित, लांछित और उत्पीड़ित हुए हैं; वे सभी इन दिनों परधर्म ग्रहण कर इन तथाकथित ऊच्च वर्णोंके विरुद्ध खड़े हो पड़े हैं। जो अत्याचारी हैं, जो दाम्भिक हैं,

धूम केतुकी तरह जो बराबर जन साधारणकी आशङ्काके कारण होकर रहते हैं; वे पाशविक बलसे जितना भी बलवान क्यों न हों, उनका ध्वंस अनिवार्य है। अत्याचारी अपनी चिता आप रचता है।

इसीसे हम सब देखते हैं कि कंसभी स्वयं ही अपनी मृत्यु का कारण बना था। अपने अत्याचारी नौकरोंके साथ कंसके मरने पर भगवान श्रीकृष्णने देवकी, वसुदेव और उसके पिता उग्रसेनको जेलसे मुक्त किया। उग्रसेनजीको मथुराके सिंहासन पर बैठाया। उग्रसेनजी पहले मथुराके सिंहासन पर बैठनेमें अनिच्छा कर रहे थे; परन्तु कृष्ण भगवानने जब कहा कि—

"मायिभृत्य उपासीने, भवतो विबुधादयः।
बलिंहरन्त्यवनताः, किमुतान्येनराधिपाः ॥"

मेरे द्वारा रक्षित होकर आपके मथुरामें राज्य करते रहनेसे, भूमिपरके राजाओंकी बातको कौन कहे, स्वर्गके देवतागण भी आपके वसमें होकर आपको भेंट देंगे और पूजा चढ़ायेंगे।

कृष्णके इसी आश्वासनों पर उग्रसेनजी कृष्णमें अचल होकर प्रीति युक्त मथुराका राज्य करने लगे। मथुरा वासी नर-नारी भगवान श्रीकृष्णकी कृपासे निःशङ्क चित्तसे घरमे रहकर योगियोंको भी दुर्लभ सच्चित्-आनन्द-घन परमेश्वरका साक्षात्कार कर जीवन सार्थक करने लगे।

मथुरापुरी आज सभी प्रकारसे भगवान श्रीकृष्ण द्वारा सुरक्षित

है। मथुरापुरीका दूसरा नाम मधुरापुरी है। 'मधु' शब्द का अर्थ है अत्यन्त आनन्द। आनन्द स्वरूप परमात्मा इस देह रूप मथुरापुरीमें बराबर विराजमान हैं। इसीसे इस देहको मथुरा या मधुरा कही जाती है। हम सब भगवानको सर्वव्यापी और सर्वभूतोंकी अन्तरात्मा कहा करते हैं। मन्दिरों मन्दिरोंमें उसकी उपासना करते हैं। सन्यासियोंके आश्रमों आश्रमोंमें, योगियोंके निवासमें, पहाड़की गुफाओंमें, उसको कितना खोजते फिरते हैं? समुद्रके किनारे, पहाड़ोंकी चोटियों पर, वियावान जंगलोंमें, उसे पानेके लिये कितना ढूँढ़ते रहते हैं। भगवानको पाऊँगा मानकर वेद, पुराण, धर्मशास्त्र दर्शन, विज्ञान, आदि कितना पढ़ते रहते हैं, किन्तु हम सब भूल जाते हैं कि जो सर्वव्यापी हैं, सर्व भूतान्तरात्मा हैं, जो सर्वज्ञ हैं, सर्व विद हैं, जिसकी सत्तामें जगतकी सत्ता है। जिसके प्रकाशमें विश्वका प्रकाश है। जिस सच्चिदानन्दघन भगवानकी आनन्द कणिकाको पाकर आब्रह्मस्तम्ब पर्यन्त समुदाय जगत् तृप्त है; वही रसमय निरतिशय आनन्द स्वरूप भगवान हमारे हृदय, हमारी बुद्धि, हमारे चित्त, हमारे स्थूलदेह, और हमारे सब पर व्याप्त हैं। हम भूल जाते हैं जो हमारे प्रत्येक कार्य, हृदयके प्रत्येक भाव, मनकी प्रत्येक चिन्तायें, उसी सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान श्रीकृष्णकी सत्तामें उसके प्रकाशमें और उसके ही आनन्दमें समाया हुआ है। मिट्टीका बना घड़ा जैसे अन्दर और बाहरसे मिट्टीमय रहता है। सोनेका बना जेवर जैसे अन्दर और बाहर से सोनाही सोना रहता है, उसी तरह हमारे अहंकारकी हमारी बुद्धिकी, हमारे मनकी जो कुछ भी

मै और 'मेरा' मानकर है, उन सबोंके अन्दर बाहर व्याप्त होकर आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण भगवान सर्वदा विराज रहे हैं। वे हम सबों के अन्नमय ; प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय शरीररूप गुहाओंमें होकर, हमारे अत्यन्त समीप हैं। निरतिशय प्रेमास्पद होकर भी हम उसे अपनेसे अत्यन्त दूर मान रहे हैं। ऐसा हम क्यों समझते हैं ?

कौन हमें अत्यन्त प्रियतम, हमारे हृदयके राजा, हमारी अपनी ही अन्तरात्मा भगवान श्रीकृष्णके समीप जाने नहीं देता है ? हम और हमारा प्रियतम सच्चिदानन्दघन भगवान श्रीकृष्णके बीच व्यवधान रूपमें, अज्ञान होकर स्याहीके रंगे पर्दोंसा दुर्लंघ्य पर्वतके रूपमें कौन आकर खड़ा होता है ? किस कारणसे हम युग-युगकी अभिलाषा लिये अपने हृदय धन, भवजलधिके एकमात्र रत्न, अपने अन्तर के अन्तरात्मा, पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका साक्षात् नहीं पाकर, अपने हृदय की व्याकुलता, मनकी अस्थिरता, प्राणकी पीपासा नहीं मिटा पाते हैं। **वह बाधा वह रोक मेरा 'अहंकार' है। वही अभिमान रूप कंस है।** इसी कंसको अर्थात् इस अहंकार—अभिमानको हटाना ही भगवान श्रीकृष्णकी साक्षात् प्राप्तिका एकमात्र उपाय है। श्रीकृष्णमें अनन्या भक्ति करना। श्रीकृष्णके चरण कमलमें सर्वतो भावेन शरणागति रखनी। जो काय मन और वाक्योंसे श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका शरण गहता है, उसका शोक, ताप सब दूर भाग जाता है।

"सर्व धर्मान्परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।
अहंत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः।"

कैसी अभयवाणो है। जीवके प्रति असीम करुणाका कैसा निदर्शन है। पतित पावन शोकमोह दूर करने वाले निखिल सन्तापहारी श्री भगवानकी यह अमृतमयी वाणी ही गीताके उपदेशोंका सार है। सभी साधनाओंका गूढ़ रहस्य है। धर्म अधर्म, कर्म, अकर्म, पाप, पुण्य, मैं और मेरा मानकर जो कुछ भी है, सबको भगवानके चरण मे न्योछावर कर उनका शरणापन्न हमे होना होगा। भगवानमे एक निष्ट शरणागति ही जन्म, मृत्यु, जरा व्याधिके ग्राससे मनुष्यको उद्धार करनेमें समर्थ है। भगवानके चरणमें जो जिस रूपमें शरण लेता है, उसे वे उसी भावमें अपना बना लेते हैं।

किसको किस भावमें वे अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं, इसे कोई नहीं बता सकता है। जीवके सभी जीवन रहस्यको वह जानते हैं। जो व्यक्ति कामुक है, उसे कामके ही स्तरसे, जो क्रोधी है, उसे क्रोधके ही स्तरसे, जो लोभी है, उसे लोभके भीतरसे, जो अज्ञानी है उसे अज्ञान द्वारा, जो मोही है, उसे मोह द्वारा, जो दाम्भिक है, उसे दम्भ द्वारा, जो ईर्षालु है, उसे ईर्षा द्वारा, जो भक्त है, उसे भक्ति द्वारा, जो कर्मी है, उसे कर्म द्वारा, जो नास्तिक है, जो आस्तिक है; उन सबोंको नास्तिकता और आस्तिकता द्वारा, पापीको पापके ही स्तर से पुण्यात्माको पुण्यके अंन्दरसे, वे सर्वभूत हितेरत, पतित पावन, रसिक चूड़ामणि, सर्वज्ञ, सर्व विद्, सर्व शक्तिमान, प्रेममय भगवान प्रेमकी डोरीसे बराबर खींचते रहते हैं।

पापके बीचसे उन्होंने जगाई और मधाई को अपना बना लिया था। कामके अन्दरसे कुब्जा को तथा गोपियों को अपना पन देदिया।

था। दम्भ और द्वेषके बीचसे ऊन्होंने कंस, शिशुपाल, तथा जरासन्धका उद्धार किया था। भगवानमे शरणागत साधकको अपनी समझकी कुछ नहीं रहती है। भगवान स्वयंही साधन मार्गकी बाधाओं को हटा देते हैं। साधकके स्थूल देह (Physicial body) तथा साधकके सूक्ष्म देह (Vital और Mental bodies), दिव्य रूप धारण (divinised) करते हैं। अभिमान—अहंकार रूप कंस इससे विनाश पाता है। साधककी तब "बुद्धिर्विनष्टा गलिता प्रवृत्तिः" होती है। ऊसकी बुद्धि उसका मन उसका प्राण, उसका अहंकार, तब और व्यष्टि भावमें (Individual) रूपमें; स्वतन्त्र भाव से (as a Separate entity) का कार्य नहीं करता है। वह अपनी सभी सत्ताको उसी सच्चित् आनन्द घन परमेश्वरकी सत्ताके, प्रकाशमें और उस आनन्दमें पूर्णरूपसे लीन कर देता हैं। साधक के ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया शक्तिके परिच्छिन्नत्व, ससीमत्व (Limitedness) विलोप पाते हैं। साधक उस अवस्थामे जगत्को जगतके रूपमें नहीं देखता है; उस समय वह विश्वको ब्रह्म देखता है। इस प्रकार साधक के कर्तृत्व, भोक्तृत्व का सम्पूर्ण विनाश होनेपर, उस साधकके द्वारा जो कार्य होते हैं। वे स्वयं भगवानके होते हैं। भगवान उसी निर्मल चित्त साधक के द्वारा जीव और जगतका परम कल्याण साधन करते रहते हैं। इसीसे हम सब देख पाते हैं कि कंसके विनाश होनेपर भगवानने उग्रसेनको मथुराका राजा बनाकर स्वयं विश्व-हितके सभी कामोंको किया है।

वेदका कहना है कि—

"भीषास्माद् वातः पवते, भीषोदेति सूर्यः,
भीषादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥"

परमेश्वरके भयसे वायु बहता हैं। उस भयसे ही सूर्य उग रहा है। अग्नि, इन्द्र, मृत्यु उसके ही भयसे अपने अपने कामोंमें लगे हुए हैं। भगवतके अलङ्घ नियममें संसारके कार्य्य चल रहे हैं। भगवानके इस नियमको कोई भी नहीं लांघ सकता है। इस नियमको ऋषिगण समुद्यत वज्रोंकी नाईं कहते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्यने गार्गीको पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भगवानके नियम सम्बन्धमें इस प्रकार उपदेश दिया हैः—

"एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि, सूर्याचन्द्र मसौ विधृतौ तिष्ठतः। एतस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि, द्यावा पृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः ।······दर्वीं पितरः अन्वायत्ताः।"

हे गार्गि! इस अक्षर पुरुषका जो पुरुष सर्वभुतान्तरात्मा है, वेदने जिसे साक्षात अपरोक्ष ब्रह्म कहकर उपदेश किया है, उसी सर्वान्तर पुरुषोत्तम भगवानके प्रशासनमें सूर्य चन्द्र, द्यु लोक, पृथ्वी, काल तथा जगत समुदाय धारित है। देवतागण और पितृगण अपने अपने कार्यको उसके ही नियमोंके अधीन रहकर करते जा रहे हैं।

हम सब इस समय ज्ञानके जिस स्तरमें वर्त्तमान हैं। उस स्तर में हम सब जिन सब नियमोंको देख पाते हैं, चित्तके विशुद्ध होने पर और इन्द्रियोंमें दिव्य भाव आने पर हमें वे ज्ञानके और एक दूसरे

स्तरमें पहुंचाते हैं। पहले स्तरमें जो असम्भव समझा जाता था, दूसरे स्तरमें देख पाता हूं वे सब सरल और सत्य हैं। इस समय हम सब समझ रहे हैं कि "यदि हममें बुद्धि, मन अहंकार नहीं रहे तो काम कैसे चल सकता है।" भगवद्भक्तिके द्वारा किन्तु पवित्र जो विशुद्ध बुद्धि; विशुद्ध मन; विशुद्ध अहंकार है, वह बुद्धि, वह मन, वह अहंकार, परिच्छिन्न नहीं है। देश कालका नियम वहाँ ढीला पड़ जाता है। उस समय कर्तृत्वा भिमान, भोक्तृत्वाभिमानोंसे रहित होकर भी भगवद्भभक्त कार्य करते रहते हैं। वसुदेव, देवकी; नन्द, यशोदा, गोपियां, अक्रूर, उद्धव ओर उग्रसेन, आदि सबोंने काम किये हैं। उन सबोंकी दृष्टिमे किन्तु उन्होंने काम नहीं किया है। अभिमान रूप कंसके मरनेपर 'उग्रसेन राजा बननेसे अनिच्छुक थे भगवानकी अपरोक्षानुभूतिके बाद, साधकका मन उपशान्त होकर केवल सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्णमें ही चित्तको संलग्न कर रहना चाहता है। वह उससे अलग नहीं होना चाहता है। इस अवस्था में भी साधककी शरणागति पुरी नहीं होतीं है। साधककी उग्रसेन रूपी बुद्धिने मानो भगवानसे कहा "हे आत्माराम। हे प्रियतम! आप जो मेरे पुत्रसे भी बढ़कर, धनसे भी बढ़कर, मैं और मेरा कहकर जो कुछ है, उन सबोंकी अपेक्षा आप प्रिय हैं। मैं और राज्य नहीं चाहता हूं! राज्यमें जो सुख है, उसे तो देख चुका हूं। राजा होकर भी अपने पुत्र कंसके द्वारा जेल भोग चुका हूं। अभिमान रूपी कंस एवं उसके समर्थक सैकड़ों राजस और तामस वृत्ति रूप अनुचरोंने मुझे छेद छेदकर चलनी बना दिया है। और नहीं

चाहिये। हे दीननाथ ! हे शरणागत पालक हे पतित पावन ! आप जब सम्पूर्ण जगतके ईश्वर हैं, तो फिर मेरे इस स्थूल और सूक्ष्म देह रूप छोटेसे जगतके भी आप ईश्वर हैं। आप मेरे हृदयके राजा हैं। आप मेरे इस मथुरा पुरी रूप शरीरके एक मात्र अधीश्वर हैं। इसीसे कहता हूं हे नाथ ! अपने राज्यका आप ही राजा बनें। मैं राजा नहीं होना चाहता हूं।"

जिस साधकने एकबार भी काय-मनोवाक्यसे भगवानके शरणको पकड़ा है, भगवान उसे सहजमें नहीं छोड़ते हैं। भगवान उसकी शरणागतिको पूरा कर देते हैं। भगवानने इसीसे उग्रसेनसे कहा कि "तुमने तो हममें सर्वस्व अर्पण किया है न ? अपने बोलनेके लिये तो तुमने कुछ बचाया है नहीं ? तो फिर इस समय मथुराका राजा क्यों नहीं होना चाहते हो। हेय (उपेक्षा) उपादेयकी समझतो आपके जैसे शरणागत साधकको रखना ठीक नहीं है ? जो मेरा शरणागत है, उसे किसका भय है। तामसिक और राजसिक स्वभाव रूप पृथ्वी के राजे रजवाड़े, सात्विक स्वभावरूप देवतागण अथवा और किसी से भी आपको कोई भय नहीं होना चाहिये। आप ही तो कह रहे हैं; केवल कहते हो सो भी नहीं ? आप अनुभव पा चुके हैं कि मेरी कृपासे आपको दिव्य दृष्टि हुई। आप इस समय अपरोक्ष भावसे अनुभव पा रहे हैं कि मैं केवल सारे जगतका ही आधीश्वर नहीं हूं, प्रत्येक जीव शरीरके अणु परमाणुओंका भी ईश्वर हूं। प्रत्येक हृदयका मैं राजा हूं। अतएव जब किसी भी कार्य्योंमें आपको कर्त्त्वका अभिमान या

भोक्तृत्वका अभिमान नहीं है, तब मथुराका राजा होना या नहीं होना आपके लिये बराबर है। आपके समान विशुद्ध सत्व भक्त ही मेरी लीलाके सहचर हैं।"

भगवानकी कृपासे शरणागत साधक कुछ करके भी कुछ नहीं करते हैं। इसका कारण है कि साधकको यह स्पष्ट समझ पड़ता है कि कोई एक-ईश्वरीय शक्ति ही परम प्रेमास्पद श्रीकृष्ण भगवानके स्पर्शसे उद्वेलित हो रहा है। वह अपनेको करोड़ों टुकड़ोंमें खण्ड खण्ड बांटकर भगवानके चरण कमलमें न्यौछावर कर रहा है। करोड़ों ब्रह्माण्ड रूप फूलोंसे प्रेमास्पद की पूजामें संलग्न है। उग्रसेन भगवान श्रीकृष्णके आश्वासनसे अत्यन्त आनन्दित होकर उनकी आज्ञाके अनुसार मथुराके सिंहासन पर बैठे। मनमें ही उन्होंने सोचा कि–"भगवान आप चाहे सिंहासन पर बैठाइये, या नरकमें बैठाइये मेरे लिये सभी समान है। आप जो सर्वत्र हैं, इससे हम सर्वदा आपके पास हैं।"

भगवान श्रीकृष्ण उग्रसेनको मथुराका राजा बनाकर, अपने पिता वसुदेव और माता देवकीके पास पहुंचे। वसुदेव और देवकी ने कृष्णके महत्वको समझ लिया था। उन्होंने हृदयंगम किया था कि जिसे वे अभी तक पुत्र समझ आये हैं, वे सर्वान्तर्यामी स्वयं परमेश्वर हैं। श्रीकृष्णको सामने देखकर वे इस कारण कुछ भी नहीं बोल सके। वे दोनों हाथ जोड़े खड़े रहे।

"देवकी वसुदेवश्य विज्ञाय जगदीश्वरौ,
कृत सम्वन्द नौ पुत्रौ, सस्वजातेनशङ्कितौ।"

भगवानमें पुत्र बुद्धिकी जगह भगवत्‌बुद्धि उनके हृदयमें जम गई थी। भगवानमें वात्सल्य प्रेमसे जिस रस माधुर्यको साधक आपने चित्तमें अनुभव करते हैं, वह अपूर्व है। उस रसानुभूतिमें उस आनन्दमें, कोई शङ्का और मलिनता नहीं है। ईश्वर बुद्धिकी जो साधना होती है, उसमें थोड़ा सा संकोच रहता है। कुछ कुछ अपराधका भय लगा रहता है। यह साधना की पहली अवस्था है, जिसमें साधकको "तवैवाहं" का अनुभव होता है। मैं आपका ही हूं, आप जगतके नाथ हैं, मैं जगतसे अलग नहीं हूं। अतएव आप मेरी रक्षा करें। वात्सल्य भावसे साधनाकी यह अवस्था "ममैवत्वं" की हैं। तुम मेरे ही हो। यह, प्रेम-हृदय पर अधिकार करता है। देवकी और वसुदेवको साधनाके दूसरे स्तर पर आगे बढ़ाना होगा ? कृपासिन्धु भगवानने लीला करनेके लिये ही धरा धाम में अवतार लिया है। उनके प्रति पिता माताको पुत्र बुद्धिके स्थान पर ईश्वरकी वुद्धि हो पड़ी है, यह देख भगवानने उनके प्रति अनुग्रह कर जिसमें वसुदेव और देवकी, वात्सल्य भावनाके अपूर्व रसमाधुर्यका उपभोग कर धन्य हो सकें, इसके लिये उनके चित्तसे ईश्वर बुद्धिको हटा दिया। इससे भगवानके प्रति वात्सल्य रससे देवकी और वसुदेवके हृदय उछल पड़ें। भगवान श्रीकृष्णको पासमें पाकर गोदमें उठा लिया और बार बार मुख चूमकर आनन्द रसमें डूब गये।

मैंने पहले ही कहा है। श्रीमद्‌भागवत उपनिषद् या वेदान्तका एक श्रेष्ठ भाष्य है। यह केवल उपनिषद्‌का ही भाष्य नहीं है। इसमें साधनाके अपूर्व मार्ग सुन्दर ढंगसे बताये गये हैं। साधारण मूर्ख

भी जिसमें धीरे धीरे उपनिषदोंके तत्वको समझ ले, आनन्दघन सच्चित्-आनन्द, रस स्वरूप परमेश्वरका साक्षात्कार पाकर जीवन सफल कर सके, संसारके तापोंसे तप्त जीवोंके प्रति करुणार्द्र चित्त भगवान व्यासदेवने इसीसे इस अपूर्व भागवत ग्रन्थको रचा है। इस बार श्रीकृष्ण भगवानकी मथुरा लीला वास्तवमें आरम्भ हुयी है। श्रीमद्भागवतके बताये हुए; साधनके मार्गका सचमुच लक्ष्य है; सच्चित् आनन्दघन पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की प्राप्ति। साधन या उपाय भगवानकी अनन्याभक्ति है। उसमें सम्पूर्ण शरणागत मानवका मन सदा ही विषयोंसे विषयान्तरोंकी ओर दौड़ता रहता है। विषयाभि-मुखी चित्त जब धक्का खा खाकर विषय भोग में और सुख नहीं पाता है, तब वही चित्त आनन्द स्वरूप परमेश्वरका अनुसन्धान करने लगता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्यरूपराजस तामस समूह दैत्य कंसके अनुचर हैं। स्वयं कंस भी मनुष्यका अहंकार है। ये कामादिकी प्रवृत्तियाँ और अहंकार अभिमान मनुष्यके स्थूल सूक्ष्मके तीन भेदवाले शरीरमें रहते हैं। यह स्थूल शरीरका अभिमान हटाने पर भी सूक्ष्म शरीरमें रह जाता है। सूक्ष्म शरीरका अभिमान हटने पर भी स्थूलमें रह जा सकता है। इसी प्रकार स्थूल और सूक्ष्म शरीरसे अभिमान हटकर कारणमें रह जा सकता है। राजसिक और तामसिक (Vital and Physical) कामादि चित्तसे जानेपर भी सात्विक (Purely Mental) मे कामादि रह सकता है। यह साधनाका प्रथम अङ्ग (Farst Condition) है। भगवानमें शरणा गति, (Self-Surrender to God)। यह शरणागति ही साधनः

की पहली सीढ़ि है। (Self-Surrender is the frst rung of Sadhana)। यह शरणा गति जब पूरी होती है, तब वही साधना की अन्तिम सीढ़ि होती है। (Self Suerrender when Complete is the last rung of Sadhana) जिसने परमेश्वर को नहीं देखा है, वह कैसे परमेश्वरका शरणागत हो सकता है? इस प्रश्नके उत्तरमे ऋषियोंने कहा है—"परमेश्वर हैं। हम सबोंने साधनाके पथ पर चलकर उनका साक्षात् पाया है। धन्य हुए हैं। आप उसी पथ पर चल कर आगे बढ़ें। आप भी उनका साक्षात् पाकर धन्यहो जायेंगें। ऋषिके वाक्योंमें श्रद्धा और विश्वास कर साधनाके मार्ग पर आगे चलते रहना होगा।

वैज्ञानिक रसायनिक ज्योतिषी गणितज्ञ अथवा ऐतिहासिकों की बातोंका विश्वासकर जिस प्रकार हम सब ज्ञानकी खोजमे आगे बढ़ते हैं, उनकी बातोंके अनुसार काम कर उसके सत्यको पालते हैं; ठीक उसी तरह ऋषि मुनियोंकी भी बातों पर श्रद्धा रखकर, उन सबों के दिखाये राह पर चलते हुए साधन करते रहनेसे और ठीकसे उन सम्बन्धोंके आदेशोंका पालन करते रहनेसे, निश्चयही मनुष्य उस सत्यको पानेमे समर्थ हो जाता है। ऋषियोंने जो केवल अपनी बातों पर विश्वास रखकर परमेश्वरके अस्तित्वको मान लेने पर जोर दिया है, ऐसी बातें भी नहीं हैं। उन्होंने युक्तियां भी दिखायी है, जो संक्षेपमें इस प्रकार हैं :—

"इस जगतमें हम देख पाते हैं कि—जड़ स्वयं कोई कार्य नहीं कर पाता है। चैतन्यसे अधिष्ठित होकरही जड़ कार्यकारी होता है।

प्रत्येक कार्योंका कोई कारण रहता ही है। वह कार्य चैतन्यसे अधिष्ठित होकर ही सम्पन्न होता है। जगत भी एक—कार्य है। अतएव जगतका भी कोई एक चैतन्यकारण है। यह चैतन्यकारण जीव नहीं हो सकता है। यदि यह जीव जगत रूप कार्यका कारण होता तो, वह अपने जीवनको नियन्त्रित करनेमें समर्थ होता। दुःख वह कभी भी नहीं पाता। वह कभी भी नहीं मरता। जीवमें किन्तु भूत भविष्य और वर्तमानकी किसी भी प्रकारकी दृष्टि शक्ति नहीं है। सुख और दुःखका भोग भी उसकी इच्छाके अधीन नहीं है। उसके द्वारा किये गये कामोंके भी फलोंका भोग उसकी इच्छा पर नहीं है; उसके द्वारा किये गये कर्मोंके फल भी उसके अधीन नहीं हैं। तो यही बात सरलता से अनुमानमें आती है कि जीवके किये हुए कामोंका फल देने वाला कोई और है। कामोंका फल देने वाला कर्म स्वयं नहीं हो सकता है कारण है कि—कर्म जड़ है। जड़-कर्म कभी भी फलदाता नहीं हो सकता है। अतएव फल दाताजीवके अतिरिक्त एक कोई ऐसा चैतन्य पुरुष है, जिस की दृष्टि देश और कालकी सीमामे नहीं है। वह सर्वज्ञ है, सर्वविद् है, इसीसे वह सभी कर्मोंका फलदाता है। वह सर्व शक्तिमान है। इस कारण वह इस विचित्रतासे भरे जगतको रचने हारा विधान कर्ता विधाता है। उसीके नियम मे करोड़ों ग्रह, नक्षत्र सब अपने अपने मार्ग पर अविश्रान्त चल रहे हैं। किसीसे किसीका संघर्ष नहीं होरहा है। उसीके शासनमे सूर्य, चन्द्र, अग्नि, काल आदि अपने अपने कार्योंमें लगे हुए हैं।"

वेद कहते हैं—

सपर्य्यगात् शुक्रमकायम्अव्रणम् ।
अस्नाविरं शुद्धं अपाप विद्धम् ॥"
कविर्मनिषी परिभूः स्वयंभूः ।
यथा तथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्, शास्वतीभ्यः समाभ्यः ।"

ईश्वर आकाशके समान सर्वव्यापी हैं। सभी भूतोंकी अन्तरात्मा है। वह स्व प्रकाश हैं। सूर्य, चन्द्र, तारे, अग्नि, बिजली आदि कोई भी चमकीले पदार्थ उसे प्रकाश नहीं कर सकते हैं। उसकेही प्रकाश से सम्पूर्ण जगत प्रकाशित है। कोई पाप, कोई धर्म कोई अधर्म उसे नहीं छू सकता है। प्रकृतिके परिणाम स्वरूप हम सबोंका जिस प्रकार स्थूल और सूक्ष्म, भौतिक और कारण शरीर है, उसका उस तरहका नहीं है, वह शरीरसे हीन है। उसका देह चिन्मय है। उसका प्राकृतिक पंच भौतिक शरीर नहीं है। "शीर्यते=इति शरीरम्" जो क्षण क्षणमें शीर्ण होता है, उसीको शरीर कहते हैं। हम सबोंका शरीर प्रत्येक क्षण क्षणमे विकार पारहा है, किन्तु परमेश्वर अविकारी है, स्वप्रकाश है, सर्व व्यापी है और पूर्ण है। वह सभीके अन्दर और बाहर व्याप्त होकर रह रहा है, प्रकृतिको सत्ता और प्रकाश जिसकी सत्ता और प्रकाशके अधीन है, उस सच्चित् आनन्द घन परमेश्वरका भौतिक शरीर कैसे हो सकता है? वह अविद्याके मलसे रहित है। विमल ज्ञानका स्वरूप है। वही सर्वदृक् है और सभीका प्रकाशक है। मन तथा बुद्धिकी ईशिता होनेसे वह सर्वज्ञ है, सर्वविद् है और सभी का ईश्वर है। कोई भीं उसे लांघ नहीं सकता है। वह सबके उपर वर्त-

मान हैं। इसलिये वह परिभूः है। उसका कोई कारण नहीं है। वह स्वयं भूः हैं। उसने प्रजापतियोंके लिये अपने अपने कर्मोंका फल तथा कर्त्तव्य अलग कर दिये हैं।

शरणागत भक्तोंकी इच्छा पूरी करनेके लिये सच्चिदानन्द भगवान श्री कृष्ण दिव्य चिन्मय मूर्ति धारण करते हैं। भगवानकी इस दिव्य मूर्ति की उपासना कर भक्त इसी जीवनमे तीनतापोंसे छुट कर कृतकृत्य होता है।

"तमेवयूयं भजतात्म वृत्तिभिः।
मनोवचः काय गुणैः स्वकर्मभिः।
अमायिनः काम दुघाङ्घ्रि पङ्कजम्
यथा धिकारा र्वासतार्थ सिद्धयः।"

—भा-४।२१।३३

काय मन और वाणीसे अपने अपने आश्रमोचित कर्मके द्वारा परमेश्वर का भजन करनेसे सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं। वे कल्पतरु और काम दुधा हैं। उनके चरण कमलका आश्रय लेनेसे सभी विषयोंमें सिद्धि मिल जाती है। उनकी सेवासे हृदयकी सारी कुटिलता दूर हो जाती है। सभी कामनायें परमेश्वरमें जाकर समाप्त हो जाती हैं। इसीसे परमेश्वरका साक्षात्कार होनेसे जीवकी सभी कामना पूरी हो जाती है। वह भक्त साधक उस समय आप्त काम होकर अकाम हो जाता है। आत्मानन्द आत्म-क्रीड़ और आत्म-रति हो पड़ता है।

श्री कृष्णकी मथुरा लीलाका तात्पर्य यही है कि भगवानमें सम्पूर्ण रूपसे निवेदित चित्तवाले व्यक्ति जो काम करते हैं, उन कामों में उनके कर्तृत्वाभिमान और भोक्तृत्वाभिमान नहीं रहते हैं। जिस प्रकार छोटी प्रणालियों द्वारा सुशीतल जलकी धारा बहकर सूर्यकी किरणोंसे तपी भूमिको शान्त करती है; उसी प्रकार भगवानकी करुणा धारा भगवद्भक्तके बीचसे इस तप्त मरू रूप जागत् वासीके हृदयको शान्ति और आनन्द देकर विश्वमें एक अमृतमय राज्यकी प्रतिष्ठा करती है।

रासलीला (३)

रासलीला की आध्यात्मिक व्याख्या और तात्पर्य

महाराज परीक्षित—विवेक, वैराग्यवान, मुमुक्षुसाधक माने गये हैं। विचार पूर्वक ऐहिक और पारलौकिक भोग्यके सभी विषयोंकी अनित्यता उपलब्धि कर नित्य वस्तुओंकी खोजमें गुरुके पास जाकर उनके उपदेशोंको सुन रहे हैं।

वसुदेव का आध्यात्मिक तत्व

मृत्यु सभीकी आने वाली है। प्रत्येक क्षणमें कालरूपी मृत्यु सभी प्राणियोंके शरीरको ध्वंस करती जा रही है। नित्य वस्तु एक मात्र सच्चिदानन्द परमेश्वर परमात्मा हैं। उसे कोई ब्रह्म, कोई परमेश्वर, कोई परमात्मा, कोई भगवान, कोई राम, कोई कृष्ण, कोई शिव कोई काली, कोई दुर्गा आदि नामोंसे स्मरण किया करते हैं। कृष्ण शब्दके कृष्=माने सत्=ण=माने आनन्द होते हैं। अतएव कृष्ण शब्दका अर्थ सच्चिदानन्द है। मुमुक्षु साधक गण गुरुके पास कृष्ण

विषयकी कथा का श्रवण और मनन करते करते पवित्र हृदय हो जाते हैं। साधकका पवित्र हृदयही वसुदेव है। उसी पवित्र हृदय की भगवन्मुखी अनन्य भक्ति देवकी है। व्यासदेवने इसी भागवत्में कहा है—"विशुद्ध चित्तं वसुदेव संज्ञितम्" विशुद्ध चित्तका ही नाम वसुदेव है। मुमुक्षु साधकके हृदयमें किस तरह भगवानकी अनुभूति होती है, वही यहां पर बताई जाती है।

पृथिवी-स्थूल शरीर है। इसमें कंस आदि उपद्रवी राजा है—चित्तकी राजसी और तामसी प्रवृत्तियां आध्यात्मिक, आधि भौतिक और आधि दैविक ताप-त्रय भी पूर्वोक्त राजस और तामस प्रवृत्तिरूप कंस ही है। जरासन्ध आदि राजागण उत्पीडन है।

मनुष्य तीन तापोंसे तपकर जब बहुत ही कातर हो पड़ता है, तब ब्रह्मारूप मनको पूछता है; इन तीन तापोंसे बचनेका क्या उपाय है? मन रूप ब्रह्मा समाहित होकर ध्यान द्वारा जान पाता है कि एक मात्र भगवानका साक्षात्कार ही, तीनों तापोंसे छूटनेका उपाय है। इसी तत्वको भागवत्के दसमस्कन्धके पहले अध्यायमें एकसे अठारह श्लोकों तक बताया गया है।

मथुरा

पहले मथुराका नाम मधुरापुरी था। अर्थात् जिस पुरीमें मधु हो। जिसपुरीमें एग्यारह द्वार या दरवाजे रहें, उसे ही द्वारवती या द्वारिका कही जाती है। यह मनुष्य शरीर ही मधुपुरी या मथुरा-पुरी है। कारण यह है कि इस शरीरको परिपूर्ण कर मधु या परमा-

नन्द स्वरूप, अमृत स्वरूप, भगवान विद्यमान रहते हैं। यह मनुष्य शरीर ही द्वारवती वा द्वारका है, कारण है कि इस शरीरकी दो आंखें, दो कान, दो नाकोंके छेद, मुंह, ब्रह्मरन्ध्र (तालु), नाभि, मुत्राशय, और मल द्वार हैं। ये एग्यारह हुए। इन्हीं द्वारोंके होने से मनुष्यका शरीर द्वारिका कहा जाता है। विशुद्ध चित्तमें भगवान के प्रति अनन्य भक्तिका उदय ही वसुदेवके साथ देवकीका विवाह है।

कंस—राजस तामसके चित्त में देहात्माभिमान या अहंकार कंस है। अहंकारका स्वभाव ही अभिमान करना है। विवेक वैराग्यवान मुमुक्षु साधकका श्रद्धा और भक्तिके साथ भगवानका ध्यान करते करते चित्त निर्मल हो पड़ता है। निर्मल चित्तवाले यही साधक अनन्या भक्तिके साथ ईश्वरकी ओर आगे बढ़ते हैं। इस समय साधककी निम्न प्रकृतियां प्रबल हो उठती हैं। अहंकार अभिमान रूप कंस. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्षा और द्वेष प्रभृति अहंकाररूपी कंसके अनुचरगण, अर्थात् राजस तामसके संस्कार समूह; चितमें उठ उठकर, साधकको भगवानसे विमुख करते हुए संसारकी ओर प्रबलतासे खींचते रहते हैं।

कंसरूपी अहंकार सोचता है कि यदि नित्य और निरन्तर भगवानके ध्यानमें रत रहूंगा, तो मैं मर जाऊँगा। यह स्वादिष्ट भोजन, और सुन्दर जलपान आदि तो कुछ भी न कर पाऊंगा। इस प्रकार दिनों दिन निराहार और आधा पेट खाकर तो बचना कठिन होगा? इस तरह चित्त जितना ही भगवानकी ओर आगे बढ़कर आनन्द

पाता है, उतना ही अहंकार उस चित्तको संसारकी ओर खींच कर उस आनन्दको नष्ट कर देता है। यही है कंस द्वारा देवकी के छ पुत्रोंका विनाश करना। इस तत्वको भागवतके दसम स्कन्धके पहले अध्यायके १६ वें श्लोक से लेकर समाप्तिके ४८ वें श्लोकोंमें प्रकट किया गया है।

साधकका विशुद्धचित्त 'वसुदेव' है। ईश्वरके प्रति उसी विशुद्ध-चित्तकी साध्वी भक्ति 'देवकी' है। विशुद्धचित्तमें अनन्य भक्ति का उदय या मिलन ही 'वसुदेव' के साथ देवकीका विवाह है। भोगैश्वर्य प्रवण राजस-तामस अहंकार ही कंस है। भक्तिसे पवित्र विशुद्ध-चित्त साधक जब भगवानके ध्यानमें प्रवृत्त होता है, तब राजस तामस अहंकार रूप कंस सोचता है कि भगवानका ध्यान करनेसे लोग हमें साधु कहेंगे। मेरी प्रशंसा करेंगे। इस प्रकार सोचकर अहंकार रूप कंस साधकके साधन-पथमें किसी भी प्रकार का विघ्न नहीं करता है ; अपितु अनुकूल हो जाता है। कंसका स्वयं ही सारथी बनकर रथपर बैठाकर वसुदेव और देवकीको ले जानेका तात्पर्य यही है।

मतलब यह है कि साधनाकी पहली अवस्थामें अहंकार रूप कंस विरोधी नहीं होता है। पीछे जब देखता है कि बराबर ही ध्यानमें लगे रहनेसे उसे भोगोंसे अलग होना पड़ेगा, तब अनेक भोग और ऐश्वर्यकी भावनाको चित्तमें लाकर अहंकार उससे भगवानकी भक्तिको नष्ट कर देना चाहता है। कंस देवकीको मार देने पर तुल पड़ता है। जिस साधकने किन्तु एकबार भी आन्तरिकतासे

भगवान्का शरण गहा है। जिसने एक बार भी कहा है। "प्रभु ! मेरी रक्षा करो। आप जगतके नाथ हैं, मैं जगतसे बाहर नहीं हूं। आपके अतिरिक्त मेरा अपना कोई भी नहीं है। हे दीन दयालो ? हे पतित पावन ! मेरी रक्षा करो। कामना और वासनाके हाथों से हमें बचाओ। हमे पूरी तरह अपना बना लो।" ऐसे साधककी रक्षा भगवान सदा ही किया करते हैं। साधकके सत्व प्रधान भग-वन्मुखी चित्तमें विचारका उदय होता है। वह तब राजस तामस अहंकार रूपी कंसको समझाने लगता है। भाई मन ! कितना दुःख पाकर, जीवनमें कितना ठोकर खाकर; यही तो भगवानके ध्यानमें लगे हो, किन्तु तुम सैकड़ों कामनाओंके लोभोंको हृदयमें उठा उठा कर इस सद्योजात भक्तिको मार देना चाहते हो। यह क्या तुम अच्छा कर रहे हो। भोग करके तो देखा है न ? भोगसे तृप्ति कभी होती है क्या ? स्त्री कहो, मालिक कहो। पुत्र कहो, कन्या कहो, रुपये या पैसे कहो, मान, यश, पाण्डित्य आदि कोई भी तो तुम्हें भरपूर नहीं कर सकते हैं। कितना दिन बचोगे ? जन्मके साथ ही साथ मृत्यु भी जन्म लेती है। आज हो या सौ वर्ष हो, मृत्यु अवश्य-म्भावी है। मृत्युके बाद जीव अपने कर्मोंके वस दूसरा शरीर धारण करता है। अपने कियेका फल भोगता है। जीवात्मा स्वरूपतः अजर अमर अभय और अशोक है। केवल भोग-ऐश्वर्यके मोहमें तुम अपने इस अमृत स्वरूपको भूल गये हो। इस अमृत स्वरूपकी प्राप्तिका एक मात्र उपाय है; श्रद्धा भक्तिके साथ शरणागत होकर भगवानकी उपासना करना। उपासना करनेसे तुम्हें जो सभी भोग

खाना पीना आदि छोड़ना ही होगा, ऐसी बात तो नहीं है ? तब तुम केवल भोगैश्वर्यमें ही मत्त मत रहो। इस प्रकारके विचारों द्वारा राजस तामस अहंकार रूपी 'कंस' भक्ति रूपी देवकीकी हत्या करनेसे रूक जाता है। तब सत्वगुण प्रधान विशुद्ध चित्तके साधक कायमन और वाणीसे भगवानका शरण गहकर श्रद्धा और भक्तिके साथ भगवानकी उपासना करनेमें लगता है।

भगवानकी उपासनाकी ऐसी महिमा है कि साधक जितना ही दृढ़ संकल्प होकर भागवत जीवनमें आगे बढ़ता जाता है, उतनाही उस चित्तसे भोगका जीवन दूर होता जाता है। इसलिये राजस और तामसकी वासना या उसके संस्कार समूह प्रवल वेगसे चित्त में उठकर साधकको संसारकी ओर खींचते रहते हैं। कुछ समयके लिये ये साधककी श्रद्धा भक्तिको प्रायः नष्ट सा कर देते हैं ? यह शरीर उस समय साधककी दृष्टिमें जेल सा जान पड़ता है। वसुदेवके छः पुत्रोंकी हत्या एवं वसुदेव और देवकीको जेलमें बन्द कर राजस तथा तामस रूपी अहंकार कंस राज्य करने लगता है। विवेक वैराग्यवान मुमुक्षु साधक इस भोगमय शरीर रूप कंसके जेलमें बंद होकर हतोत्साह नहीं होता है। वह अनुतापकी आँसू बहा बहा कर कातरता भरी प्रार्थना भगवानको जनाता रहता है।

हे प्रभु ! भगवान आप आईये ! मेरी रक्षा कीजिये। इतने दिनों तक आपकी उपासना और आपके ध्यानमें कितना आनन्द पाया है; किन्तु हे प्रभु ! हे दीन दयालु। हे पतित पावन ! इस समय मुझे यह क्या होगया ? कामना वासना मुझे अपनी ओर फिर लिये जा

रही है। मैंने विचार कर देख लिया है। संसारके सभी पदार्थ ही अनित्य और असार हैं। इस जगतमे यदि कोई सार वस्तु है और कोई नित्य है, तो वे वस्तु आप सच्चिदानन्द ही हैं। मैं सैकड़ों चेष्टा करके भी, इस राजस और तामसके संस्कारोंकी वासनाओं से अपनेको किसी भी तरह नहीं बचा पाता हूं। इस समय अपना अहंकार अपनी ममता, अपना कर्तृत्व आदि सबको आपके चरणों पर भेंट चढ़ाता हूं। आप आईये प्रभु! आप तो अन्तर्यामी हैं, आप सर्वज्ञ हैं, सर्व त्रिद् हैं और सर्व शक्तिमान हैं। आप मेरे मन तथा हृदयको देख ही रहे हैं। मैं कितना दुःखी हूं, इसे जान ही रहे हैं, अतएव मेरी रक्षा कीजिये।

"असतोमासद गमय्, तमसो माज्योतिर्गमय् मृत्योर्माऽमृतंगमय"

अनित्य असार वस्तुओं से सत्स्वरूप नित्य वस्तु अपने पास मुझे ले चलें। अज्ञान स्वरूप अन्धकारसे ज्योति स्वरूप, स्व प्रकाश चैतन्य स्वरूप, अपने पास मुझे ले चलें। मृत्युसे अमृत स्वरूप अपने पास मुझे ले चलें। प्रभु!

विवेक वैराग्यवान विशुद्ध चित्त दृढ़ संकल्प साधक जब एकाग्र चित्तसे उपर कहे गये "असतो मासद गमय" वाला अभ्यारोह नामक मन्त्रका जाप करते करते धीरे धीरे भगवानकी ओर अग्रसर होते जाते हैं। इस अवस्थामें साधकके चित्त अधिकतर निर्मल होते जाते हैं। उनके उसी निर्मल चित्तमें परमानन्दकी अभिव्यक्ति होती है। साधक तब उस नित्य आनन्दका यहीं रहकर अनुभव करते करते आत्मबलसे बलवान हो जाते हैं। वासना, राजस, तामस संस्कार समूह

और उसे भगवानसे हटाकर सांसारिक भोगमे नहीं लिपटा पाते हैं। साधकका वही निर्मल आनन्दमय आत्म बलसे बलिष्ठ भगवन्मुखी चित्त व्रज धाम कहाता है। इस व्रजधामके राजा नन्द हैं। अर्थात् परमानन्द स्वरूप अमृत स्वरूप ईश्वर हैं। उनकी पराशक्ति ब्रह्म-विद्या 'यशोदा' कहाती है। अर्थात् जो यश स्वरूप ईश्वरको दान करे, भाव यह है कि जो ईश्वरका साक्षात्कार करादे, वही यशोदा है। देवकीके सातवें गर्भका व्रजधाममें रहनेवाली रोहिणीके गर्भके स्थापनःका यही अभिप्राय है। रुह् धातुसे 'रोहिणी" शव्द बनता है। रोहिणी वही शक्ति है, जो क्रमागत भगवानकी ओर चल रही है। साधकके आनन्दमय निर्मलचित्तकी इस रोहिणी शक्तिसे बलरामका जन्म हुआ है। अर्थात् साधक आत्म बलसे बलवान होकर नित्य निरन्तर परमानन्दका अनुभव करता रहता है। इस रोहिणीके उदय होनेसे साधकका चित्त रूप आकाश शान्त और निर्मल हो जाता है; उस समय उसी शान्त और निर्मल चित्तमे साधककी इच्छित भगवानकी मूर्तिका प्रकाश होता है। कंसके जेलमे देवकी और वसुदेवके सामने चतुर्भुज विष्णु मूर्ति धरकर सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवानके प्रकट होनेका यही तात्पर्य है।

साधकके पवित्र चित्तमे जब बलरामका उदय होता है। अर्थात् दृढ़ संकल्प साधक जब भगवानके चरणमें अपने कर्तृत्व ओर भोक्तृत्वको समर्पण करते हुए, "अभ्यारोह मन्त्र"का जाप करते करते एकाग्र चित्त से भगवानकी ओर अग्रसर होते जाते हैं। उस समय भगवान उन्हे आत्म बलसे बलवान कर देते हैं। साधकके हृदयमे तब परमानन्दकी अपरोक्षानुभूतिको वे धीरे धीरे देते रहते हैं। साधक

आनन्दकी अनुभूतिसे आत्मबलसे महान् आत्म वीर्य हो जाते हैं। इस अवस्थामें उन्हें स्वयं जान पड़ता है कि शीघ्रही सच्चिदानन्द परमात्मा परमेश्वरका साक्षात् पाकर वे धन्य होंगें। साधकके मन रूप ब्रह्मा, अहंकार रूप रुद्र, इन्द्रिय गण रूपी देव समूह, आनन्दमें विभोर होकर भगवानकी स्तुति करने लगते हैं—

"ब्रह्मा भवश्चतत्रैत्य, मुनिभिर्नारदादिभिः।
देवैः सानु चरैः साकं, गीर्भिर्वृषण मैड़यन्॥"

भा० १०।२।२५

ब्रह्मा एवं रुद्रने नारद प्रभृति मुनियों और अनुचरोंसे घीरे देवताओंके साथ कंसके जेलमें आकर विविध शब्दोंमे सभी इच्छाओंको देने वाली भगवानकी स्तुति करने लगे। साधकके मन, अहंकार और इन्द्रियां परमानन्दके स्वादमें प्रसन्न हो उठीं। साधक तब सभी कामोंके देनेवाली भगवानकी स्तुति करने लगे।

"सत्य व्रतं सत्यपरं त्रिसत्यम्।
सत्यस्य योनिं निहितञ्चसत्ये।
सत्यस्य सत्यं ऋत सत्य नेत्रम्
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥

भा० १०।२।२६

भगवानने जो साधकको नहीं छोड़ा है, उन्होंने उसे वासना भरे भोगकी विशेषताके अहंकार और अत्याचारसे उसे बचाकर आत्मबलसे बलवान बना दिया है। साथही शीघ्र उसे दर्शन भी देंगें, इस

अटल विश्वाससे छलक कर साधकने कहना आरम्भ किया है। हे भगवान ! हे दीन दयालु ! हे प्रणत पालक ? आज मैंने मर्म मर्म से जान लिया है कि "आप सत्य व्रत हैं। अर्थात् सत्य संकल्प हैं। आपका संकल्प, आपकी इच्छा अव्यर्थ है। ऐसा नहीं होनेसे मेरे समान अधमको, मेरे समान भोगा सक्तको, इस प्रकार महान् कैसे कर दिया है ? आप परम सत्य हैं, अर्थात् आपको पानेका सर्व श्रेष्ठ साधन है-सत्य निष्ठ होकर मन और मुखको एक कर सरल चित्तसे आपमे शरणा गति करनी। मैंने यह भी जाना है कि एकमात्र आपही त्रिसत्य हैं।" अर्थात् वर्तमान, भूत एवं भविष्यके इन तीनों कालोंमें सत्स्वरूपमे, नित्य सच्चिदानन्दके रूपमे, प्रकाशमान रह रहे हैं। आप कभी भी अपने सत् स्वरूपसे भ्रष्ट नहीं होते हैं। कभी भी परिणाम प्राप्त नहीं होते हैं। तीनों कालमें ही आप सच्चिदानन्दके रूपमें विद्यमान हैं। आप सृष्टिके पहले भी हैं, वर्त्तमानसे भी हैं। कारण यह है कि आप सत्यस्यं योनिं" हैं। अर्थात् स्थूल सूक्ष्म सभी जगतके कारण हैं। 'सत्'का अर्थ पृथ्वी, जल और तेज है। अर्थात् स्थूलभूत है। 'तत्' का अर्थ वायु एवं आकाश है। ये दो सूक्ष्म भूत हैं। इसलिये 'सत्' एवं' तत्' स्थूल सूक्ष्म जगत् होते हैं। आप इन स्थूल सूक्ष्म जगतके कारण हैं। इसलिये आप अतीतमे भी वर्तमान रहते हैं। आप अन्तर्यामीके रूपमे 'निहितं च सत्ये' हैं। अर्थात् इस जगतके अन्दर और बाहरको व्याप्तकर विद्यमान हैं। वर्त्तमान कालमे भी एक मात्र आपही सत्यके स्वरूपमें वर्त्तमान हैं। आपही 'सत्यस्य सत्यं' हैं। अर्थात् स्थूल सूक्ष्म इस जगतके बीच एकमात्र पारमार्थिक सत्य वस्तु आपही

हैं। इस जगतका विनाश होनेपर अर्थात् प्रलयकी अवस्थामें एकमात्र आपही बचे रहते हैं। सुतरां भविष्यमे भी आपही रहते हैं। "ऋत सत्य नेत्रम्" भगवाकी संकल्पात्मक ज्ञान शक्तिको ऋत कही जाती है। उस ज्ञानात्मक संकल्प शक्तिके कार्यकी अभिव्यक्तिको सत्य कहा जाता है। अथवा ऋत माने मधुर वाणी और सत्य माने समदर्शन है। आपका अमोघ संकल्पही, जगतके रूपमे खिल रहा है।

आप मधुरवाणी हैं और समदर्शनके प्रवर्तक हैं। सभी प्रकारसे सत्यात्मक आपके चरणों पर हम शरणागत होते हैं।

साधकके मन और इन्द्रियां जब इस प्रकार सर्वतोभावेन भगवानके शरणागत होते हैं, तो साधकके उसी विशुद्ध चित्तमें भगवान प्रकट होते हैं। साधकने पूर्व पूर्व जन्ममें एवं इस जन्ममें भी जिस रूपमें भगवानका भजन किया है। जिस नाम या जिस रूपमें भगवानका ध्यान या जाप किया है, भगवान अपने शरणागत भक्त साधककी अभिलाषा पूरी करनेके लिये, उसके समीप उसी भावमें उसी रूपमें प्रकट होते हैं।

भक्तके हृदयमें भगवानका यही प्रकाश; कंसके जेल रूप इस शरीरमें श्रीकृष्ण भगवानके रूपमें जन्म लेता है। साधक यदि शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारी विष्णुकी उपासना करता है, तो साधक अपने पवित्र हृदयमें उसी रूपमें विष्णुमूर्तिका दर्शन पाता है। राम, कृष्ण, शिव या किसी देवी भगवतीकी मूर्तियोंकी उपासना करनेसे, वेही सब मूर्तियां उसके ध्यानमें दीखती हैं। भगवानकी वे मूर्तियां चिन्मयी होती हैं। आनन्दमयी होती हैं। भगवानके उस रूपके प्रत्येक अङ्गों

से अमृतकी धारा, आनन्दकी धारा बहती है। साधक अपने इष्टदेव के दर्शनसे परमानन्दसे भर कर तृप्त होते हैं। साधकके पवित्र आनन्दमय, अमृतमय, हृदय-रूप व्रजधाममें वे मनोहर इष्ट मूर्तियां बराबर दिखती रहती हैं।

वसुदेव द्वारा श्रीकृष्णको व्रजधाममें ले आना यही है। साधकके आनन्दमय हृदयमें अर्थात् 'नन्दके राज्य' में ब्रह्म-विद्यारूपिणी यशोदाका उदय होता है। साधक इस समय इस नन्दके राज्यमें वासका अनुपम मनोहर चिन्मय रूपको देखकर आनन्दसे विभोर हो पड़ते हैं। उनका यही आनन्दमय चित्त नन्दका राज्य व्रजधाम है। इस राज्यकी अधिष्ठात्री देवी यशोदा हैं। वेदका कहना है—

"न तस्य प्रतिमा अस्ति,
यस्य नाम महत् यशः।"

भगवान ही यशके स्वरूप हैं; उस यश स्वरूप भगवानको जो दान करता है, अर्थात् उनसे मिला देता है। वही यशोदा है। यशोदा ब्रह्म विद्या, परा विद्या है। गोः अर्थात् किरण ज्योतिः है। वेद प्रतिपाद्य ब्रह्मकी चैतन्य ज्योति गो होती है। साधकका पवित्र आनन्दमय चित्त चैतन्यकी ज्योतिसे उद्भासित हो उठता है। साधकके पवित्र हृदयकी जो मननशक्ति इस चैतन्य शक्तिकी रक्षा करती है, वही 'गो' है। शुद्ध चित्तकी 'ब्रह्मा कारा' या भगवानके आकारमें आकारित इन्द्रिय और मनोवृत्तियां सब गोपिनी कहाती हैं। साधकके शुद्ध हृदयकी जो शक्ति केवल भगवानकी ओर अग्रसर होती रहती है,

वही शक्ति 'रोहिणी' कहलाती है। भगवानकी अपरोक्षानुभूतिसे साधकके हृदयमें जो आनन्दमय तथा आत्म वीर्यका आत्मवल उत्पन्न होता है, वही आनन्दमय आत्मवल 'बलराम' कहा जाता है। आत्मबलसे बलवान पवित्र हृदय साधक सर्वदा अपने इष्ट देवका मनन करते रहते हैं। भगवान अपने शरणागत भक्तकी अभिलाषा वाली मूर्ति धारण कर भक्तके साथ क्रीड़ा करते रहते हैं। इस क्रीड़ा के छलसे भक्तके हृदयमें राजस तामस प्रवृत्ति रूप दैत्योंका विनाश कर साधककी सभी तरहसे रक्षा करते हैं। उसकी सभी कामनाको पूरा कर तृप्त करते हैं। शरणागत भक्त साधकको ऐसा कुछ भी नहीं करना पड़ता है। भगवान ही उसके सभी भारको अपने ऊपर ले लेते हैं। परिच्छिन्न अनित्य विषय समूहोंकी भोग वासना यदि साधकके सन्मुख उपस्थित होती है, तो भगवान ही उस भोगासक्तिको विनष्टकर देते हैं। शरणागत, पवित्र-हृदय साधक इष्ट देवका साक्षात् दर्शन कर आनन्दमें आत्म विभोर होकर जब केवल भगवानकी ओर अग्रसर होते जाते हैं, तो उनकी निम्न प्रकृतियोंसे राजस तामस अहंकार रूप कंस, राजस तामसके संस्कार समूहोंको जगाकर साधकको फिरसे संसारकी ओर प्रबल भावसे खींचता है।

पूतना प्रभृति के वधका तात्पर्य

कंसेन प्रहिताघोरा, पूतना बाल घातिनी।
शिशूंश्चचार निघ्नन्ती, पुर-ग्राम-व्रजादिषु ॥

भा० १०।६।२

साखेचर्यें कदोपेत्य, पूतना नन्द गोकुलम् ।
योषित्वा माययाऽऽत्मानं, प्राविशत् कामचारिणी ॥

भा० १०।६।४

सुवाससं कम्पित-कर्णभूषण-
त्विषोल्लसत्-कुन्तल-मण्डिताननाम् ।
वल्गुस्मितापाङ्ग विसर्ग वीक्षितै-
र्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम् ॥
अमंसताम्भोज करेण रूपिणीं
गोप्यः श्रियं द्रष्टु मिवा गतांपतिम् ॥

भा० १०।६।५-६

कंसके द्वारा भेजी गई पूतना नगर और गाँवोंके बच्चोंकी हत्या करती फिरती थी। एक बार वही पूतना आकाशमें उड़कर माया द्वारा अपनेको सुन्दरी स्त्रीका रूप बनाकर नन्दजीके गोकुल मे पहुंच गई। सुन्दर कपड़े और गहनोंसे सजकर मनोहर स्त्री मूर्ति धरकर जहाँ कृष्ण सो रहे थे, वहाँ वह पहुँच गई। गोपियां और यशोदा उस अपूर्व स्त्रीकी मूर्तिको देखकर मुग्ध हो गई। उस रूपको देखकर सोचने लगीं। मानो लक्ष्मीही अपने पति विष्णुको ढूँढ़ रही हों। भगवान श्रीकृष्णने पूतनाके षडयन्त्रको समझकर आँख बंदकर ली। पूतना ने जब श्री कृष्णको गोदमें उठा लिया तबभी यशोदा या गोपियोंने उसे मना नहीं किया। बादमें पूतनाने श्रीकृष्णको मारनेके लिये जब

अपने विषेले स्तनोंको कृष्णके मुखमें डाल दिया। तब कृष्णने उसके स्तनोंको पीते हुए उसके प्राणको भी पीलिया। पूतनाने विकट डरावनी मूर्ति धरकर शरीर छोड़ दिया। जलानेके समय उसके देहसे सुगन्धी उठी थी। भगवानके स्पर्शसे पूतनाने भी सद् गति पाई।

मनुष्योंमे जोसब राजस तामस प्रवृतियाँ हैं, उनमे काम बहुतही प्रबल है। एकाग्र चित्तसे भगवानका ध्यान करते करते साधकके चित्त निर्मल हो जाते हैं। उसी निर्मल चित्तमे ब्रह्म विद्याका उन्मेष होता है। उस समय साधक अपने इष्ट देवका दर्शन पाते हैं। परमानन्दमें विभोर हो जाते हैं। इसी समय भगवान अपने शरणागत भक्तके पहलेके जन्मोंका एवं इस जन्मके जो कुछ राजस तामस संस्कार चित्तमे जमे हैं, उन सबोंकी सभी वासना या संस्कारोंको जगाकर उन्हें मिटा देते हैं।

निर्मल चित्त शरणागत साधक अपने इष्टकी मूर्तिका दर्शन करते हैं। अपूर्व आनन्दमे तृप्त होकर रहते हैं, किन्तु हठात् उनके चित्तमे राजस और तामस के अहंकारका उदय हो आया; यों ही काम भोगका संस्कार उनके चित्तमे उठ आया। वह संस्कार दिव्य स्त्रीकी मूर्ति बनाकर उसे कितना हाव भाव दिखाने लगा। साधक मुग्ध चित्तसे उस वासना कल्पित स्त्री मूर्तिको देखने लगा। उसकी ब्रह्म विद्यारूपिणी यशोदा मोहित हो गई। उसके एकाग्र चित्तकी भगवानकी मनन रूपिणी गोपियां ठिठक गयीं। उसके इष्टदेवके दर्शनका परमानन्द लोप होने लगा। किन्तु जिस साधकने काय मन और वाक्योंसे कभी एकबार भी कहा है कि "हे प्रभु!

हे पतित पावन ! हे दीन दयालु मेरी रक्षा करें। आपको छोड़कर मेरा अपना कहने योग्य कोई नहीं है। मैंने आपका शरण गहा है। उस साधकको भगवान कभी भी नहीं छोड़ते हैं।" भगवान उस शरणागत साधकके सामयिक कामकी भावनाको हटा देते हैं। साधकके हृदयमे विचार बुद्धिको जगा देते हैं। उस समय साधक देखते हैं कि जिस स्त्रीकी मूर्ति पर वे मोह गये थे; वह घृणित रूपका विकट मल मूत्रका एक वर्तन है। इस प्रकार भगवान शरणागत भक्तके विषयोंकी—भोगाशक्तिको दूर कर साधकको फिरसे आत्मकाम एवं भगवत्काम कर देते हैं। भगवान इस प्रकार साधकको आत्मकाम कर उसके भोगमय जीवनको भागवत-जीवनमे बदल देते हैं।

शङ्कट-भञ्जन

नन्दस्य पत्नीकृत मज्जनादिकं,
विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः।
अन्नाद्यवासः स्त्रगभीष्ट धेनुभिः,
संजात निद्रा क्षमशीशयच्छनैः॥
औत्थानिकोत्सुक्यमना मनस्विनी,
समागतान् पूजयती व्रजौकसः।
नैवाश्रृणोद् वैरुदितं सुतस्यसा,
रूदन्स्तनार्थी चरणा वुदक्षिपत्॥

अधः शयानस्य शिशोरनोऽल्पक
प्रवालमृद्वङ्घ्रिं हतं व्यवर्तत ।
विध्वस्तना नारस कुप्य भाजनं,
व्यत्यस्तचक्राक्ष विभिन्न कूबरम् ॥

—भा० १०।७।५-७

पंच प्राण, दश इन्द्रिय, मन और बुद्धिको लेकर मनुष्यके सूक्ष्म शरीरका गठन हुआ है। यह सूक्ष्म शरीर ही मनुष्यका असल शरीर है। मनका स्वभाव है, संकल्प विकल्प करना अर्थात् यह वस्तु क्या है, ऐसा ही है, या दूसरी तरहका ? इस प्रकारके संशयोंको उठाना ही मनका स्वभाव है। बुद्धिका स्वभाव है, वस्तुओंको निश्चित कर देना। अहंकारका स्वभाव है अभिमान अर्थात् मैं देह हूं। मैं पुरुष हूं। मैं स्त्री हूं। मैं करता हूं। मैं भोक्ता हूं। चित्तका स्वभाव अनुसन्धान करना है। कभी कभी मन, बुद्धि, अहंकार एवं चित्त ये चारों अन्तःकरणके मन बुद्धि या चित्त कहकर माने गये हैं।

मनुष्यके सूक्ष्म शरीरमें अर्थात् मन या चित्तमें पहले जन्मों की भोग वासनाके सैकड़ों संस्कार निहित हैं। यह स्थूल देह एवं सूक्ष्म देह मानो एक गाड़ी है। इस गाड़ी पर स्त्री-पुत्र, धन, दौलत, मान, यश, भोज्य प्रभृति बहुतसे पदार्थोंको सजाकर यह मानवीय शरीर जीवन यात्रा कर रहा है। भगवानकी कृपासे, गुरूकी कृपा से, शास्त्रों की कृपा से एवं आत्मा की कृपा से मनुष्य जब भगवन्मुखी होकर नित्य निरन्तर भगवानका शरणागत

होकर, ध्यान और जप करता रहता है, उस समय भी उसकी बाहरी वासनादूर नहीं होती है। वह भगवानकी अनुभूतिकी कभी कभी उपेक्षा कर बाहरी विषयोंकी ओर दौड़ जाता है। जैसे यशोदा जीने श्रीकृष्णको गाड़ीके नीचे सुलाकर अर्थात् भगवानको तुच्छ कर उत्सवमें मात गयीं थीं।

भगवान अपने शरणागत भक्तोंकी इस प्रकार की संसारिक आसक्ति देखकर रोने लगते हैं। मैं जो तुम्हारे पुत्र, कन्याओंसे, स्वामी स्त्रीसे, पिता मातासे, सगे सम्बन्धियोंसे, बन्धु बान्धवोंसे, यश सम्मानसे, धन दौलतसे, तुम्हारे स्थूल और सूक्ष्मशरीरसे सर्वापेक्ष प्रियतम हूं; कारण है कि मैं तो तुम्हारा ही स्वरूप हूं। सबोंसे निकटतम हूं एवं अत्यन्त प्रियतम वस्तु हूं। तुम हमें देखकर भी मेरे आनन्द में धन्य होकर भी, फिर मुझे त्यागकर सांसारिक विषयोंकी ओर क्यों दौड़ गये। साधक भगवानकी इस बात पर जब ध्यान नहीं देते हैं, तब भी भक्त वत्सल भगवान अपने भक्तोंको नहीं छोड़ते हैं। वे असीम करुणा प्रकट करते हुए, भोगके प्रवल मनको अर्थात् अनेक कामनाओं से भोग्य पदार्थोंसे सजे मनरूप गाड़ीको अपने चरणोंके स्पर्शसे दूसरी ओर फेंक देते हैं। अर्थात् भक्त के भोगमय जीवनको नष्टकर भक्तको भागवत जीवनका योग्य अधिकारी कर देते हैं। **शकट-भंगका यही तात्पर्य है।**

भगवानकी कृपासे साधकके निर्भय होकर भागवत जीवनमें आगे बढ़ने पर भी, उसके राजस तामस संस्कार साधनके मार्गमें रोड़े अटकानेसे नहीं चूकते हैं। साधक नित्य निरन्तर भगवानका ध्यान

कर रहे हैं, भगवानके आनन्दकी अनुभूति उन्हें हो रही है, फिर भी, हठात् उनमें किसी साधारणसी बातोंको लेकर क्रोध उभर आता है। साधक उस समय क्रोधमें भरकर भगवानको भूल जाता है। अपनी चिरकालकी साधना भी वे भूला देता है, परन्तु असीम करुणामय भक्तवत्सल भगवान अपने शरणागत भक्तके चित्तमें अनुतापको जगा देते हैं। साधकके तब व्याकुल प्राणसे भगवानके निकट प्रार्थना करने पर, भगवान साधकके चित्तसे क्रोधको सदाके लिये दूर कर देते हैं। साधकके शान्त चित्तमें प्रकट होकर अपने आनन्दसे साधकको तृप्त कर देते हैं। यही है कृष्ण भगवानके द्वारा कंसका भेजा गया तृणा वर्तासुरका बध।

एकदाऽऽरोहमारूढं लालयन्ती सुतंसती।
गरिमानं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरि कूट वत्॥
भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिताभार पीड़िता।
महापुरुषं मादध्यौ जगतामास कर्मसु॥
दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंस भृत्यः प्रणोदितः।
चक्रवात-स्वरूपेण जाहारासोनमर्भकम्॥

भा० १०।७।१८-२०

एकबार यशोदाजी अपने पुत्र श्रीकृष्णको गोदमे लेकर प्यार कर रही थीं। उसी समय कृष्णको पर्वतकी नाई भारी समझने लगीं। कृष्णका वह भार असह्य हो जाने पर यशोदाजी उन्हें धरतीपर

सुलाकर उनके कल्याणार्थ मन्त्रोपचारसें लग गईं। उसी समय कंसका नौकर तृणावर्त नामका असुर बिन्डोआ (घूर्णिवायु) होकर श्रीकृष्णको धरतीसे उठाकर आकाशमें उड़ाले गया।

साधकके पवित्र चित्तमें जब भगवानका दर्शन होने लगता है, तब साधकको अप्रमत्त होकर रहना होता है। क्षण भर भी उसे भगवानसे अलग नहीं रहना चाहिये। नित्य निरन्तर केवल भगवत्के भावमें रहना चाहिये। निरन्तर भगवानका ध्यान-जाप करते करते यदि मन में क्लेश हो, आलस्य और थकावट आकर यदि चित्तपर अधिकार कर ले, एवं साधक यदि विरक्त होकर ध्यान छोड़कर, दूसरे कामोंमें लग पड़े, तब राजस तामस अहंकार रूप कंस उसके चित्तमें तृणावर्त रूप क्रोधको बढ़ाकर साधकको मोह लेता है। भगवानसे साधक को खींचकर संसारमें लिप्त कराकर उसके भगवद्दर्शनको तथा आनन्द की अनुभूति आदि सब को नष्ट कर देता हैं।

क्रोधात् भवति संमोहः
संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंसात् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।

क्रोधसे संमोह अर्थात् कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यकी विवेक बुद्धिका नाश हो जाता है। विवेक बुद्धि शून्य होने पर ध्यान जनित भगवान की अनुभूतिका विनाश होता है। भगवानके विषयकी बुद्धि नाश पाती है। इस प्रकार संसारमें आशक्त होकर जन्म और मृत्यु पाता रहता है। भक्तवत्सल भगवान अपने शरणागत भक्तको राजस

तामस प्रवृत्तियोंसे रक्षा करते हैं। तृणावर्त रूप क्रोधका विनाशकर भक्तके मनको अपनी ओर और भी वढ़ा देते हैं। भगवानके मिट्टी खानेके समय यशोदाजीके कहने पर भगवानके मुख फाड़नेसे यशोदाजीके द्वारा चराचर उसी मुखमें विश्वके दर्शनका यही तात्पर्य है।

भगवान इन्द्रियोंके अगोचर हैं। मनके अगोचर हैं। उनका अन्तर और बाहर नहीं है। वह देश काल द्वारा अपरिच्छिन्न हैं। उन्हें अहंकार पूर्वक मन बुद्धि और इन्द्रिय द्वारा, तपस्या, शास्त्र अध्ययन जनित परोक्ष ज्ञान प्रभृति किसी भी प्रकारकी साधनों द्वारा अपने प्रभावमें नहीं लाया जा सकता है। बिन्दु मात्र भी अभिमान हृदयमें रहनेसे भगवान दिखाई नहीं देते हैं। मैं भक्त हूं। मैं साधु हूं। मैं ज्ञानी हूं। भगवान मेरे वशमें हैं। इस प्रकारके अभिमान रहनेसे भगवानका दर्शन नहीं मिलता है। यशोदाजीके द्वारा श्रीकृष्णको डोरीसे बांधनेकी व्यर्थ चेष्टा तथा डोरीके दो अंगुल नापके कम जानेका यही तात्पर्य है। यह दो प्रकारका अभिमान ही डोरीका दो अंगुल कम होना है। मैं भक्त हूं, मैं ज्ञानी हूं, इन दो अभिमानों में और भगवान मेरे वशमें हैं, इन अभिमानोंको छोड़कर आकुलता से भगवानके शरणको गहना ही; भगवानके पानेका उपाय है। यशोदाजीने जब कृष्ण मेरे पुत्र हैं, वे मेरे वशमें हैं, इन दो अभि-मानोंको छोड़ दिया, तब श्रीकृष्ण स्वयं आकर उनके प्रेममें बंध गये। शरणागत भक्तके दर्प और मदको दूर करना ही कृष्ण द्वारा

यमलार्जुन को उखाड़ फेकना है। दर्प और अहंकारसे शून्य होकर भक्त साधक प्रेम पूर्ण हृदयसे भगवानके पास प्रार्थना करते हैं।

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायाम्,
हस्तौचकर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवास-जगत् प्रणामे,
दृष्टिः सतांदर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥

—भा० १०।१०।३८

हे प्रभु, हे परमेश्वर, हे दीनदयाल ? मेरे प्रति इतनी कृपा कीजिये प्रभु ? जिससे मेरी वाणी आपके ही गुणोंके कथनमें रत रहे। मेरे कान जिसमें आपकी ही कथाओंको सुना करें। मेरे हाथ आपके विश्व-विभात विश्व-रूपकी सेवा मानकर सब कामोंको करे। मेरा मन जिससे आपका ही मनन किया करे। आप ही जो विश्वके रूपमें प्रकाशित हैं, यह बुद्धि जिसमें मेरी दृढ़ रहे, गर्व, और अहंकारको छोड़कर मेरा मस्तिष्क जिसमें सभी भूतोंमें स्थित आपकी मूर्तिके स्वरूप, सभीके सामने नत रहे। आपके भक्तोंके ही साथ जिसमें हम समय काटें, अर्थात् सत्ससंगमें ही रहें।

भगवान इस प्रकार शरणागत भक्तके हृदयसे काम, क्रोध, दर्प और अहंकारोंको दूर भगाकर, उसके हृदयको केवल भगवान मय कर देते हैं, अर्थात् भागवत् बना देते हैं। जो साधक जिस भावसे अर्थात् दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर आदिमें जैसा चाहते हैं, भगवान उसी भावसे भक्तको दर्शन देकर उसकी इच्छा पूरी कर देते

हैं। काम, क्रोध, दर्प और अहंकार जब भक्तके हृदयसे चला जाता है। तब उसका चित्त अधिकतर निर्मल हो जाता है। तब भगवान में शरणागति भी दृढ़ हो जाती है। भक्तका आत्मबलसे बलवान, निर्मल, निर्भय, आनन्दमय केवल भगवन्मुखी हृदय ही वृन्दावन है। इस वृन्दावनमें शरणागत साधक भगवानके साथ अनेक प्रकारका सम्बन्ध जोड़ता हुआ, अनेक क्रीड़ायें करता रहता है। साधककी इस अवस्थामें सात्विक अहंकारके उठने पर, अर्थात् मैं बड़ा भक्त हूं, मेरे समान और कोई भी भगवान का दर्शन नहीं कर सकता है, इस प्रकारका अभिमान भक्तके हृदयमें उठने पर भगवान उस सात्विक अभिमानको दूर कर देते हैं। वत्सासुर बधका यही तात्पर्य है।

शरणागत भक्तोंके निर्भय होकर पवित्र हृदय रूप वृन्दावनमें भगवानको अपरोक्ष भावसे सर्वदा अनुभव करते रहनेपर भी, राजस तामस अहंकार रूप कंस साधककी साधनामे विघ्न डालनेसे नहीं चूकता है। साधकके हृदयमे दुर्दमनीय लोभ वकासुर आ पहुंचता है। साधके भगवत् अनुभूतिको वह निगल लेता है। तब विह्वल होकर साधकके भगवानको पुकारनेसे भक्त वत्सल भगवान साधकके चित्तसे सांसारिक विषयोंके लोभको पूरी तरह हटा देते हैं। श्रीकृष्ण द्वारा वकासुरके वधका यही तात्पर्य है। असीम करुणामय भगवान अपने शरणागत भक्तके हृदयको निर्मल कर देते हैं। साधकके चित्त मे यदि दूसरेके प्रति डाह रूप पापका उदय होता है, तब भगवान उस डाह रूप अघासुरको मार डालते हैं। पापका विनाश साधन कर भक्तके हृदयको पवित्र कर देते हैं। विवेक वैराग्य वान मुमुक्षु

साधकके अपने पवित्र हृदयमें जिस नाम और रूपको लेकर अर्थात् रामनाम राम रूप, शिवनाम शिव रूप तथा कृष्ण नाम कृष्ण रूप के समान परमेश्वरके अनेक नाम रूपका अवलम्बन कर एकाग्र चित्तसे ध्यान करते रहनेसे, भगवान उसी नाम और रूपमे शरणागत भक्तको दर्शन देते हैं। भक्त साधक उसी मनोहर रूपके दर्शनमे आत्म विभोर होकर भगवानके साथ दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर आदि भावोंका आश्रय कर एक आनन्दमय सम्बन्ध जोड़ते हैं। आनन्दमें विभोर होकर अपने इष्टकी सेवा करते रहनेसे उसके हृदय मे यदि काम, क्रोध, लोभ आदि राजस तामस भावोंका उदय होता है, तो ऐसा होनेपर भगवान इन्हे दूरकर शरणागत भक्तके हृदयको निर्मल कर देते हैं। राजस तामस अहंकार रूप कंसकी शक्ति इतना प्रवल है कि भगवानकी करुणाका परिचय बार बार पाने पर भी तथा उनके मंगलमय स्पर्शोंका बार बार अनुभव करनेपर भी साधक अहंकार रूप कंसके चंगुलसे छुटकारा नहीं पाता है। अहंकार आकर साधकके चित्तमें संशय जगा देता है। मन कहने लगता है मैं जो यह इष्टदेवकी मूर्ति देख रहा हूं; उनके साथ बातें कर रहा हूं यह मूर्ति मेरा दृश्य है, अतएव यह परिच्छिन्न है। यह परिच्छिन्न मूर्ति किस तरह सर्व व्यापी और सबकी अन्तरात्मा सच्चिदानन्द परमेश्वर हो सकती है।

मनके अधिष्ठाता देव ब्रह्मा हैं। इस मन रूपी ब्रह्माको भगवान के विषयमे सन्देह होनेसे अनन्त करुणामय भगवान साधकको अपना विश्व-रूप प्रदर्शन कराते हैं। साधक उस समय देखते हैं कि

नाम रूपात्मक जो जड़, चैतन्य स्थावर जंगम चराचर विश्व ब्रह्माण्ड आदि कुछ भी पदार्थ है ; भगवानका रूप है। एक मात्र परमेश्वर ही विश्व रूपमे प्रकाश हो रहे हैं। परमेश्वरको छोड़कर जगत कहकर कोई पदार्थ नहीं है। इस प्रकार साधक अन्दर बाहर अपने इष्टदेवका दर्शन करते रहते हैं। इष्टदेवके सम्बन्धमें सारा सन्देह उसके हृदयसे चिरकालके लिये दूर हो जाता है। श्रीकृष्ण भगवान द्वारा ब्रह्माजीके मोह दूर होनेका यही तात्पर्य है।

साधकी इष्ट मूर्ति ही जो भगवान हैं, इस विषयमे साधक इस समय संशय रहित है। यदि योगि-गण योगैश्वर्य पाकर काय-व्यूह अर्थात् योग बलसे अनेक शरीर धारण करनेमे समर्थ हों, तो जो सर्वज्ञ हैं सर्वविद हैं, सर्वशक्तिमान हैं, परमानन्द स्वरूप हैं, अमृत स्वरूप हैं, सच्चिदानन्द भगवान है। वे भक्तोंकी मनो वांछाओंको पूर्ण करने के लिये भक्तकी अभिलाषानुसार मूर्ति धारण नहीं कर सकते हैं ? यह कभी भी संभव नहीं है। भगवान जब सर्वशक्तिमान हैं, तब वह इस प्रकार नहीं कर सकते हैं ? ऐसा कहनेसे उनकी शक्तियोंको सीमामें बांध देना है। इस प्रकार विचारकर भगवानका ध्यान करनेपर भी राजस तामस अहंकार रूप कंसके चंगुलसे साधक छुटकारा नहीं पाते हैं। अपने आप ही निम्न प्रकृतिसे क्रूरता आकर चित्तमें उदय होती है, किन्तु जिस साधकने काय मनो वाक्योंसे एक वार कहा है "हे प्रभु। मैं आपका शरणागत हूं, आपको छोड़कर मेरा कोई नहीं है। आप मेरी रक्षा करें।" भगवान उस शरणागत साधकको कभी भी नहीं छोड़ते हैं। वे भक्तके हृदय

से क्रूरता रूप धेनुकासुरका नाश कर देते हैं। साधकके चित्तको सरलतामय कर देते हैं। भगवान असीम करुणामय हैं। भगवान जब देखते हैं कि साधकके हृदय रूप यमुनामे साम्यिक भावसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य प्रभृति राजस तामस प्रवृत्तियोंके छुटनेपर भी उसके वीज मद रूप संस्कारोंकी वासनाये रह गई हैं। तव वे इस संस्कारकी वासना को हृदयसे हटाकर साधकके हृदय रूप यमुनाको सम्पूर्ण रूपसे निर्मल बना देते हैं। कालीय दमन एवं **कालीयको यमुनासे हटानेका यही तात्पर्य है**। कालीय रूप वासना सैकड़ों भोग विषय रूप फणाओंको फैलाकर भगवानकी अनुभूतिको नष्ट करने मे लग पड़ता है। परन्तु करुणामय भगवान उन सभी वासनाओंको साधकके हृदयसे दूर कर देते हैं। साधक उस समय आत्मकाम होकर केवल भगवान की ओर आगे बढ़ते हैं। साधकके हृदयमें भक्तिके अभिमान स्वरूप 'प्रलम्बासुर' उठता है। आत्म बलसे बलीयान आनन्दमय साधक उस अभिमानको विचार द्वारा अनायास ही विनाश कर देते हैं। **बलरामजीके द्वारा प्रलम्बासुरके बधका यही तात्पर्य है**।

आत्मवलसे वलवान साधको एकाग्रचित्तसे भगवानका ध्यान, उपासना करते हुए, यदि संसारके ताप क्लेश, दुःख आकर दबाने की चेष्टा करे, तो भगवान उस दावानल रूप, संसारके दुःखोंको दूर कर साधकके हृदयको प्रसन्न कर देते हैं। भगवानके द्वारा **दावाग्नि मोक्षका यही तात्पर्य है**।

भगवानकी अनन्त करूणाके साधक अपने हृदयमें बराबर उन्हें अनुभव कर प्रेममें विभोर हो पड़ते हैं। प्रेमकी आंसुओंसे भींगे चित्त से भगवानकी स्तुति किया करते हैं। साधकका चित्त शरद् कालकी तरह निर्मल हो जाता है। एकमात्र भगवानमें ही आसक्त चित्त वाले, निर्मल हृदयके साधक समझ पाते हैं कि सभी यज्ञोंका लक्ष्य उसकी इष्ट मूर्ति है। उनकी वह इष्ट मूर्ति परिछिन्न नहीं होती है। साधक स्पष्ट समझते हैं कि उनकी इष्ट मूर्ति सभी देवताओंसे पूज्य है। देवगण यदि साधककी साधनामें विघ्न करेंगे तो भगवान स्वयं देवगणोंके उन सभी विघ्नोंको दूरकर साधकको चैतन्य ज्योतिके प्रकाशसे प्रकाशित कर देंगे। श्रीकृष्णके द्वारा इन्द्रके दर्प चूर्णका एवं **गोवर्धन धारण का यही तात्पर्य है।** 'गो' का अर्थ दिव्य चैतन्य ज्योति है। वही ज्योति जिसमें बढ़े ऐसे कामोंके करनेको गो-वर्धन कहा जाता है। साधक यदि अपने इष्ट देवकी मूर्तियोंके अतिरिक्त अन्य देवकी मूर्तियोंके ध्यान करनेकी इच्छा करें, तो उनके हृदयसे भगवानके आनन्द की वह मूर्ति हट जाती है। साधक उस समय कष्ट अनुभव करने लगते हैं। फिर इष्टकी मूर्तिका ध्यान करते रहनेसे भगवान तब साधकके कष्टको दूरकर फिरसे साधकके हृदयमें परमानन्द जगा देते हैं। श्रीकृष्ण भगवान द्वारा **वरूणालयसे नन्दजीको ले आनेका यही तात्पर्य है।**

पहले ही कहा जा चुका है कि साधकके विशुद्ध चित्तकी भगवत्-मुखी वृत्ति समूह ही गोप और गोपियां है। साधकका पवित्र हृदय

यमुना है। अज्ञानके राजस तामसका पर्दा थोड़ा भी रहने पर, इस हृदय रूप यमुनामें गोता लगाकर, परमानन्दका अनुभव नहीं किया जा सकता है। इसीसे भगवान साधकके हृदयसे राजस तामसके भाव को कर्तृत्व, भोक्तृत्व, लज्जा, मान, भय, प्रभृतिको हटाकर साधकके हृदयको विशुद्ध सत्व कर देते हैं। श्रीकृष्ण भगवान द्वारा गोपियोंके वस्त्र हरणका यही तात्पर्य है।

साधक वसन अर्थात् कर्तृत्वादि अभिमानको छोड़कर ही हृदय रूप यमुनामें गोता लगानेमें समर्थ हो सकते हैं। हृदय रूप यमुनामें भगवत्के आनन्दका अनुभव पानेके बाद साधक फिर कर्तृत्वादिके अभिमानको ग्रहण कर लेते हैं। भक्तवत्सल भगवान अपने शरणागत भक्तके प्रति अनुग्रह कर भक्तकी अहंता ममता आदि सबको फिरसे दूर कर देते हैं। साधक तब नम्र होकर भगवानके पास खड़ा हो पड़ता है। साथ ही प्रार्थना करने लगता है। "हे प्रभु? हे प्रियतम? मैं और मेरा मान कर जो कुछ भी था, उन सबोंको आपकी चरणों पर भेंट दे चुका हूं। आईये! हे प्रभु आईये! मेरे प्रियतम! मेरे चिरवांछित, मेरे मनमें, मेरे प्राणमें, मेरे अहंकारमें, मेरी इन्द्रियोंमें, मेरे स्थूल देहमें, मेरे सबोंमें, आप अपने परम आनन्द मय, प्रेममय, अमृतमय, नयन मनोहर मूर्तिसे आईये? मेरे सब कुछ को अपने अमृत से अपना अमृतमय, प्रेममय, रसमय, बना दीजिये। "आवीः आवीर्म एधि।" हे स्वप्रकाश, चैतन्य-स्वरूप, परमानन्द स्वरूप आईये मेरे सभीमें प्रकाशित होईये।

भगवान भक्तके इस प्रार्थनाको पूरा कर देते हैं। वे अपने पवित्र

हृदय वैकुण्ठ धामको दिखाते हैं। वैकुण्ठ वही स्थान है, साधनाकी वही अवस्था है, जिसमें सभी कुण्ठा, सभी दुविधा, सब संदेह, दूर हो जाते हैं। साधकके संदेह रहित निर्मल चितमें प्रेममय, रसमय परमानन्द स्वरूप भगवान प्रकाशित होते हैं। भक्त के अहंकारमें मनमें, प्राणमें, इन्द्रियोंमें एवं स्थूल शरीरमें भगवान अपने अमृतमय प्रेममय आनन्दमय रस प्रवाहको प्रवाहितकर साधकको आनन्दमय कर देते हैं।

भगवान अन्तर्यामी हैं, वे सभीके तीनों शरीर अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण देहोंको परिपूर्ण कर विराज रहे हैं। जल जिस प्रकार तरङ्गको व्याप्त कर रहता है। सोना जैसे सोनेके हारमें व्याप्त है। मिट्टी जैसे मिट्टीके घड़ेमें व्याप्त है। परमानन्द स्वरूप भगवान भी उसी प्रकार चराचर विश्व ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं। साधकका चित्त इस समय निर्मल है। राजस तामस भाव समूह साधनके मार्गमें विघ्न नहीं कर पाते हैं। साधकका कर्तृत्वाभिमान, अहंता ममता सब भगवानके चरण कमलमें समर्पित है। साधकका चित्त प्रशान्त है। केवल भगवन्मुखी चित्तमें जो सब वृत्तियां उठती हैं, वे सब वृत्तियां भगवानको लेकर ही उठती हैं। साधकका अहंकार, मन, बुद्धि, चित्त प्राण, इन्द्रियां और स्थूल देह भगवानके पूर्ण प्रकाशकी अपेक्षा कर, उन्मुख होकर है। भगवान अन्तर्यामी हैं। सर्वद्रष्टा हैं। वे देखते हैं—

"भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्ल मल्लिकाः।

वीक्ष्यरन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥"

भा० १०।२९।१

अन्वय—भगवानपि (श्री कृष्ण भगवानने भी) ताः (उन सभी) रात्रिः (रात्रियों में) शरदोत्फुल्ल मल्लिकाः (शरद कालीन खिले मल्लिकाके फूलोंके सौन्दर्योंसे शोभायमान) वीक्ष्य (विशेष रूप से देखकर) योगमायाम् (अपनी अचिन्त्य शक्ति योग मायाका) उपाश्रितः (अवलम्बन कर) रन्तुम् (रमन करनेके लिये) मनः चक्रे (मनमें किया) ।

अनुवाद—श्रीकृष्ण भगवानने भी उन रात्रियोंमें शरद्कालीन खिले मल्लिका फूलोंके सौन्दर्योंसे उसे सुशोभित देखकर अघटन घटन पटियसी अपनी अचिन्त्य शक्तियोग-मायाका अवलम्बन कर रमन करनेको मनमें किया ।

निर्मल चित्त शरणागत साधक एकाग्रचित्तसे जितना भी भगवानकी ओर अग्रसर होते हैं, भगवान भी उसी तरह भक्तकी ओर अग्रसर होते हैं । अर्थात् भक्तके हृदयमें प्रकाश पाते हैं । भगवान चराचर विश्वको व्याप्त कर शरीरके भीतर और बाहर अणु अणु सबको परिपूर्ण कर सच्चिदानन्दघन रूपमें विराज रहे हैं । साधक जब अपने मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, प्राण सबही को भगवानमें समर्पण कर चुका है, तो भगवानने भी विचार लिया कि साधकके हृदयमें रात्रियोंके समान काम क्रोधादिसे भरी चित्त बृत्तियां और नहीं उठती हैं । पहले कामनासे कलुषित जो सब चित्त बृत्तियां साधकके हृदय में उठकर, रातमें अन्धेरेके समान ढ़कने वाली साधकके मनको अज्ञान द्वारा भगवानसे दूर ले जाने और संसारमें घसीटकर ले आने की, राजस तामस की वे कलुषित कामनाओंकी प्रबृत्तियां अब और

नहीं उभरती हैं। इस समय साधकके हृदयमें राजस तामसकी कामनायें बिल्कुल बदल गई हैं। शरद कालका आकाश जिस प्रकार मेघके हटने पर स्वच्छ और निर्मल हो जाता है। साधकका हृदयरूप आकाश भी उसी तरह सांसारिक भोग विषयकी कामना समूहों से छूटकर निर्मल हो गया है। शरद कालके मल्लिका कुसुम समूह उजले और सुगन्ध भरे होते हैं। यह उजलापन उसकी पवित्रताका द्योतक है। साधका हृदय पवित्र हो गया है। कारण है कि उसकी पहलेकी सारी कामनायें, इस समय केवल भगवानकी कामनामें पूरी पूरी बदल चुकी है। साधकके उसी निर्मल पवित्र हृदयमें अहेतु की भक्ति और पवित्र प्रेम उदय होकर, साधकके चित्तको सुगन्धमय कर दिया है। भगवानने साधकके निर्मल, पवित्र भक्ति और प्रेममय हृदयको देखकर; योगमाया अर्थात् भगवानकी जो दिव्य शक्ति, भक्त को भगवानके साथ मिला देती है; उसी दिव्य शक्तिका आश्रय कर भक्तके साथ क्रीड़ा करनेको ठानी। जिससे शरणागत् भक्त परमानन्द स्वरूप भगवानको अपनी आत्मामें, मनमें, प्राणमें, इन्द्रियोंमें एवं स्थूल शरीरमें साक्षात् पाकर कृतार्थ हो सके। इसी देहमें, इसी जन्ममें मनुष्य जीवन का लक्ष्य अमृत स्वरूप भगवानका साक्षात्कार पाकर, जीवन सफल बना सके। ऐसी ही भगवानने इच्छा की।

"तदोडु राजः ककुभः करैर्मुखं,
प्राच्या विलिम्पन्नरूणेन शन्तमैः।
सचर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्,

प्रियः प्रियाया इवदीर्घ दर्शनः ॥

भा०।१०।२६।२

अनुवाद—उसी समय चन्द्रमाने अपने उगते हुए लाल-लाल रागों से पूरबको रङ्ग दिया। जैसा कि बहुत दिनोंके बाद विदेशसे आया, पति अपनी पत्नीके मुंहको कुंकुमसे सजाता है। ठीक इसी तरह अपने सुखमय कीरणोंसे चराचर प्राणियोंके सन्तापको दूर कर पूर्ण चन्द्र उग आये।

पूरबकी दिशा जिस प्रकार शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे पूर्णचन्द्रकी अपेक्षा करते करते एक एक कलासे देखते देखते पूर्णिमाकी सामको पूर्णचन्द्रकी लालिमाकी आभासे रञ्जित हो उठता है, एवं तुरत पूर्ण-चन्द्र उदय होकर पूरबको प्रकाशित कर देता है और पूर्णरूपसे प्रकाश पायगा, इस आशासे उल्लासमें भर जाता है।

ठीक इसी प्रकार भगवानमें शरणागत साधक अपनी अहंता और ममताको भगवानके चरणोंमे समर्पण कर एकाग्र चित्तसे भग-वानका ध्यान करते रहनेसे ; अपने इष्ट देवकी मूर्तिका थोड़ा-थोड़ा दर्शन करते रहते हैं। उस समय उनका मन आनन्दसे भर उठता है। अपने इष्ट देवकी मनोहर मूर्तियोंको नित्य निरन्तर पूर्ण रूपसे हृदयमें अनुभव करते-करते और भी दर्शन करनेकी प्रबल अभिलाषा जग पड़ती है। उस दशामें साधक अधिकतर एकाग्र चित्तसे श्रद्धा और भक्तिके साथ इष्टदेवका ध्यान करते रहते हैं। इस प्रकार ध्यान करते करते उनके हृदयमें भगवानके प्रति गम्भीर अनुराग जन्म लेता है। अटल श्रद्धा अहैतुकी भक्ति उस समय उनके पवित्र हृदयमें उठ पड़ती

है। उसी समय साधक समझ पाते हैं कि उनके प्रियतम परम प्रेमास्पद इष्टदेव उनके स्थूल-सूक्ष्म दोनों शरीरोंमें शीघ्र ही पूर्ण रूपसे प्रकाश पायेंगे। जन्मसे लेकर इस जन्ममें, साधक दिन रात अपने प्रियतम, प्रेमास्पद जिस भगवानके दर्शन पानेकी आशासे अतिशय उत्कण्ठाके साथ, दिन पर दिन, रातों पर रात, सप्ताहों पर सप्ताह, पखवारों पर पखवारे, महिनों पर महिने, वर्षों पर वर्ष, विताते आये हैं। वही परम प्रेमास्पद भगवान जो शीघ्र ही पूर्णरूपसे दर्शन देकर अपने आनन्दमें अपने अमृतमें, साधकके चिर कालके प्यासे हृदय, मन, प्राण, इन्द्रिय और स्थूल सूक्ष्म शरीरको आनन्दमय; अमृतमय, कर देंगे। जिस प्रकार बहुत दिनोंके बाद विदेशसे घर आया पति अपनी स्त्रीके मुखको कुंमकुम द्वारा रंजितकर देता है। ठीक उसी प्रकार साधक आन्तरिकताके कणकणमें इसे समझ पाता है।

भगवानमें सभी प्रकारसे अनुरक्त साधक, जब अपने हृदयमें स्पष्ट समझता है कि भगवान शीघ्र ही उसकी आत्मामें उसके मनमें उसके प्राणमें उसकी इन्द्रियोंमें उसके स्थूल शरीरमें प्रकाशित होकर अपने परमानन्द स्वरूप अमृतमय रसमे साधकके सब कुछको परिपूर्ण कर देंगे, तब साधक दिन रात, नित्य निरन्तर भगवानके ध्यानमें जुटा रहता है। साधक जब बैठता है। तब वह देखता है कि उसके प्रियतम इष्टदेव उसके पास बैठे हुए हैं। जब खड़ा होता है, तब देखता है कि उसके इष्टदेव पास खड़े हैं। जब चलता है तो देखता है कि उसके इष्टदेव साथ साथ चल रहे हैं। जब स्नान करता है तो देखता है उसके इष्टदेव उसके शरीरमें पूरा भरपूर होकर हैं।

उन्हींको वे स्नान करा रहा है। जब खाने बैठता है तो देखता है कि उसके इष्टदेव शरीरमें भरपूर भरे हुए हैं, वे उन्हींको खिला रहा है। इस प्रकार उठते बैठते चलते फिरते खाते सोते सभी समय साधक अपने मनको अपने इष्टदेवमें मग्न रखता है। भगवानको छोड़ कर दूसरी कोई भी चिन्ता उसके मनमें घर नहीं कर पाती है। साधकके इस प्रकारकी अवस्थाके दर्शनसे भगवान उसकी अभिलाषा को पूराकर देते हैं।

"दृष्ट्वा कुमुद्धन्तं अखण्ड मण्डलं,
रमाननाभं नव कुँकुमारुणम्।
वनंचतत् कोमल गोभिरञ्जितं,
जागौ कलं वाम दृशां मनोहरम्।

भा० १०।२६।३

नया अरुण वर्ण कुंकुम रागोंसे रञ्जित लक्ष्मीके मुख श्रीके समान शोभायमान, प्रस्फुटित श्वेत वर्ण कुमुद पुष्पोंके सौन्दर्यसे भूषित अखण्ड मण्डल पूर्णचन्द्रको देखकर एवं पूर्णचन्द्रके उसी स्निग्ध किरणों के द्वारा वनको रंजित देखकर सुन्दर नयना कामिनी गणोंके मनको मुग्ध करने वाली भगवानने बांसुरी बजायी।

मनके अनुग्राहक देवता चन्द्रमा है। चन्द्रमा आनन्दका प्रतीक है। देवता इन्द्रियां हैं। एवं अन्तःकरणका अपरिच्छिन्न रूप है। साधनोंके बलसे परिच्छिन्न इन्द्रियां और अन्तःकरणको अपरिच्छिन्न देवरूपमें रूपान्तरित किया जा सकता है। भगवत् आनन्दमें

आनन्दमय मन देव मन है। साधनाके जगतमे लाल वर्ण अनुराग का चिन्ह है। एवं श्वेत वर्ण पवित्रताका चिन्ह है। वनका अर्थ वननीया अथवा प्रार्थनीय काम्य है। 'बाम दृशाः'का अर्थ है जिनकी आंखें अर्थात् दृष्टि सुन्दर हैं। भावार्थमें सम्यक् दर्शन तत्वदर्शी गण हैं।

साधारणतः मनुष्यकी मनोवृत्तियां बराबर ही खण्ड-खण्ड होती रहती है। मन कभी तो औरतोंमें, कभी स्वामीमें, कभी बाल-बच्चोंमें, कभी धन दौलतमे, एक नाम रूपसे दूसरे नाम रूपोंमें ; एक एककर दिनरात दौड़ता रहता है। मन कभी काममय, कभी क्रोधमय, कभी लोभमय, कभी ईर्षामय, कभी दयामय, कभी स्नेहमय ; कभी निष्ठुर-तामय, इस प्रकार मनका घेरा या चक्कर, टुकडे टुकड़े होता रहता है; किन्तु सम्पूर्ण शरणागत श्रद्धाशील भक्तसाधकका मन अविरत भग-वानमें संलग्न रहनेसे, वह मन टूकड़ोंमें नहीं बंटता है।

मन सर्वदा भगवद्की भावनासे प्रभावित होकर, मनका मण्डल या घेरा अखण्ड होकर रहता है। भगवानके आनन्दका स्वाद पाते रहनेसे, साधक का मन भगवानके आनन्दोंसे आनन्दित होकर देव-मनमे बदल जाता है। साधकका यही देव-मन केवल भगवान मे संलग्न रहकर अखण्ड हो जाता है।

भगवान अन्तर्यामी हैं। वे जब देखते हैं कि साधकका मन केवल भगवानमय हो गया है, भगवानको छोड़कर साधकका मन अन्यत्र कहीं नहीं जाता है। नित्य निरन्तर भगवानकी भावनामे ही सनकर साधकका मन अनुराग पूर्ण एवं पवित्र हो चुका है।

साधककी जो कुछ भी चाहकी वस्तुयें थीं, वे सभी भगवानकी दिव्य ज्योतिसे ज्योतिर्मय हो उठी हैं, साधक अन्दर और बाहर भगवानको ही देखते हैं, तब भगवानकी कृपासे साधकके हृदयमें अनाहत ध्वनि रूप कृष्णकी बाँसुरीकी ध्वनि उठती है। श्रीकृष्ण भगवानकी बांसुरी मे १७ (सतरह) छेदें हैं। उनके अमृतमय अधरके परससे और उनके आनन्दमय झंकारोंसे ; इन्हीं १७ छेदों द्वारा श्रीकृष्ण भगवान की दिव्य तानें एवं दिव्य झंकार निकलते हैं। सतरहों छेदें उस सुमधुर ध्वनिसे ध्वनित हो उठती हैं। इसका तात्पर्य यही है कि मनुष्यकी पांच कर्मेन्द्रियां पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच प्राण, मन और बुद्धि ये सतरह कृष्णकी बांसुरीके छेद हैं। अनाहत-ध्वनि-कृष्णकी बंसी-ध्वनि है। यह अनाहत-ध्वनि भगवानकी पराशक्तिको जगा देती है, यह अनाहत-ध्वनि दिव्य ज्योतिमय है। आनन्दमय है और शक्तिमय है। भगवानकी पराशक्ति सच्चिदानन्द रूपिणी है। यह शक्ति भगवानके साथ अभिन्न है। अखण्ड है और एक रस है। यह पराशक्ति केवल परमेश्वरको ही विषय बनाकर रहती है। अनाहत ध्वनि या श्रीकृष्णकी वंसी ध्वनि इस पराशक्तिको जगा देने पर, साधकका मन, बुद्धि, इन्द्रियां और प्राण, उसी दिव्य ज्योतिर्मय, चैतन्यमय, आनन्दमय, दिव्य-शक्तिमय, ध्वनिसे स्थिर हो जाता है। बाहरकी किसी भी विषयोंकी चिन्ता साधकके हृदयमें, तब नहीं उठती है। अन्तःकरण, इन्द्रियां और प्राण परमानन्दमे परिपूर्ण होकर अपने आप ही निष्पन्द हो जाते हैं।

भगवान सम्पूर्ण शरणागत अपने भक्तोंके अखण्ड-बुद्धि वृत्तिको,

पवित्र प्रेममय चित्त एवं भक्तोंकी जो कुछ भी चाहकी वस्तुयें थीं, उन सबोंको भगवद्-प्रेममे केवल लगा देखकर भक्तोंके प्रति करुणाका प्रकाश करते हुए; भगवान उसके शरीरके भीतर अनाहत ध्वनियोंको उठा देते हैं।

"निशम्य गीतं तदनङ्ग वर्धनं,
व्रजस्त्रियः कृष्ण गृहीत मानसाः,
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितो द्यमाः,
सयत्र कान्तो यव लोल कुण्डलाः।

—भा० १०।२६।४

अर्थ—उसी कामोद्दीपक-संगीतको सुनकर, कृष्णके द्वारा स्वीकार की गईं, चित्त वाली व्रजकी गोपियां, एक दूसरेके आपसके अजान मे, प्रियतम पति श्रीकृष्ण जहांपर थे, वहां आकर वे खड़ी हो गईं। दौड़ती हुई आनेके कारण उनके कानोंके कुण्डल डोल रहे थे। श्लोकका स्पष्ट भावार्थ यह है कि 'तत्'=उसी आनन्दमय, ज्ञानमय, शक्तिमय और ज्योतिर्मय, 'अनङ्ग वर्द्धनम्'=प्रेमको उभारनेवाली। 'गीतं'= अनाहत ध्वनि 'क्लीं' को "निशम्य"=सुनकर। 'कृष्ण गृहीत मनसा' कृष्णके द्वारा जिनके मन स्वीकार हो चुके हैं।

हम सब भगवानपर जो भेंट चढ़ाते हैं, उसे यदि वो स्वीकार नहीं करें तो वह भेंट वेकार हो पड़ती है। हम सब मुंहसे कहते हैं—'हे भगवान! मैंने अपने कर्तृत्व के अभिमान, भोक्तृत्वके

अभिमान, अपने मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, प्राण, इन्द्रियां, देह, 'मैं' और मेरे सब कुछ को ही आपके चरणोंमे निछावर कर दिया है। इस प्रकारके निछावर केवल कहनेके होते हैं। सचमुचमे हम सब भगवानको कुछ देते नहीं हैं। निछावर भी नहीं करते हैं। यदि कोई हमे गाली देता है, कोई मेरे कहनेके अनुसार काम नहीं करता है; तो उसी समय उसके प्रति हममें क्रोध भड़कता है। फिर यदि कोई हमारी प्रशंसा करता है, हमारे कहनेके अनुसार चलता है; तो उसी समय उसके प्रति मनमे प्रेम पनपता है। आसक्ति होती है। हम जब किसीको एक गाय दानमे देते हैं, तो उस गाय पर मेरा अधिकार नहीं रहता है। ममता भी नहीं रहती है। सचमुचमे यदि मनको हमने भगवानपर निछावर कर दिया है, तो फिर मनमें क्रोध, प्रेम, तथा आसक्तियां ममताकी बुद्धिसे कभी भी नहीं होनी चाहिये। हम सब जिन मिठाइयों और तरका-रियोंको भगवानको नैवेद्य चढ़ाते हैं, वह भी केवल प्रसाद खानेके लोभसे। वास्तवमें भगवानको उसे देते नहीं हैं। सचमुचमें भगवान यदि उसे खा लेते, तो बहुत ही कम व्यक्ति रोज रोज भगवान को अच्छी अच्छी चीजोंका नैवेद्य चढ़ाता? मनको यदि भगवान पर हम चढ़ा देते हैं; तो मनमें फिर ऐसा करूंगा, वैसा करूंगा का विचार क्यों उठता है? भगवान इसीसे भी उसे स्वीकार नहीं करते हैं। हम अपनी चढ़ावाका फल भी नहीं पाते हैं। हमारे चढ़ावे भगवान पर तभी चढ़ते हैं, जब काय मनोवाक्योंसे हम भगवानका शरणागत होते हैं। नित्य निरन्तर भगवद्की भावनासे भर कर मनन करते हैं;

उसका ध्यान करते हैं, तब इस प्रकार ध्यान करते, करते हम सबोंके अन्तः करणसे काम क्रोधादिके राजस तामस भाव दूर हो जाते हैं। हम जब पवित्र हृदयसे निर्मल चित्त हो उठते हैं। जब हम गुरुकी बातोंसे, वेदोंकी वाणियोंसे, अटल श्रद्धावान होकर ; विचारके द्वारा, अपनी अनुभूतियोंके द्वारा, समझ पाते हैं कि संसारके सभी पदार्थ अनित्य हैं ; वे सब क्लेश देने वाले हैं, एकमात्र सच्चिदानन्द भगवान ही नित्य परमानन्द स्वरूप वस्तु हैं ; एवं वेही मेरे परम प्रेमास्पद हैं; उसी समय भगवानमें ठीक ठीक समर्पण होता है। समर्पणका फल भी तभी मिलता है।

पहले ही कहा जा चुका है कि भगवानमे शरणागत, पवित्र हृदय भक्त साधककी भगवन्मुखी चित्तकी वृत्तियां ही गोपियां हैं। भक्त साधकका आनन्दमय पवित्र हृदय ही ब्रजधाम माना गया है। पहलेही कृष्ण द्वारा वस्त्रहरणके प्रसंगमें कहा जा चुका है कि साधक लज्जा, मान, भय, मन, बुद्धि तथा अहंकारों द्वारा कर्तृत्व भोक्तृत्व मैं और मेरा मानकर जो सब उसके हैं, उन सबोंको भगवानमें समर्पणकर उनके सामने नग्न होकर खड़ा है। उसी समयसे शरणागति पूरी होती है। भगवानमें यही समर्पण ठीक ठीक होता है। भगवान इस समयसे साधक द्वारा दिये गये, उसके मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन्द्रियां, प्राण, एवं देहको स्वीकार करते हैं। साधक अपने समर्पणका फल अब पाने लगता है। पहले ही कहा गया है कि साधकका मन जिस रूप और जिस नामसे आकर्षित होता है। भक्तवत्सल भगवान उसी रूप और उसी नामोंसे साधकको दर्शन देते हैं। जो साधक किसी

रूपका ध्यान न कर केवल सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वविद्, सभी के अन्तर्यामी, आकाशके समान सर्वव्यापी, परमात्मा परमेश्वरका नित्य निरन्तर ध्यान करते हैं। उस साधकके चित्तमें भी करुणामय भगवान अपने आनन्द स्वरूपको प्रकाश कर साधकको संतुष्ट कर देते हैं। साधककी एक निष्ठ इच्छा जब होती है कि भगवानको मैं मनमे, आत्मामे, इन्द्रियोंमे, प्राणमे, एवं स्थूल देहमें अनुभव करूं ? तब भगवान उस इच्छाको पूरी कर देते हैं। कारण है कि भगवान सर्व व्यापी हैं। साधकके अन्दर और बाहर शरीरके अणु-अणु पर्यन्तको परिपूर्ण कर आनन्द स्वरूपमे, अपने स्वप्रकाश-चैतन्य-स्वरूपमे, नित्य विराज रहे हैं। इसीसे साधक अपने स्थूल और सूक्ष्म दोनो देहोंमें रस-स्वरूप भगवानका साक्षात् पाकर ; धन्य होनेकी कामना करते हैं। भगवान भी भक्तकी इस कामनाको पूरा कर देते हैं। भगवान भक्तके पवित्र हृदयमें तब आनन्दमय अनाहत ध्वनि, या 'क्लीं', की ध्वनिको जगा देते हैं। उसी अनाहत ध्वनिको सुनकर **साधककी इन्द्रियां और चित्तवृत्तियोंके समूहरूप गोपियां** अपने आप आकर्षित होकर, रस-स्वरूप भगवानको अपनी आत्मामे, मनमे, प्राणमें, इन्द्रियोंमे और स्थूल देहमें अनुभव करती रहती हैं। **श्रीकृष्ण भगवानके साथ गोपियोंकी रास-लीलाका एकमात्र यही तात्पर्य है।**

रसका भाव ही रास है। रसका भिन्न भिन्न विकाश ही रास है। रस ही आनन्द है। ऋषियोंने इसी रसको पाकर कहा है **"रसोवैसः" रसं ह्य वायं लब्ध्वानन्दी भवति।"** परमात्मा रस

स्वरूप हैं। इस रसके स्वरूपको पाकर जीव आनन्दित होता है। श्रुति कहती है "अनेन जीवेन आत्मना नामरूपेभ्याकरवाणि।" परमेश्वरने विचाराकि "इस जीवात्माके द्वारा मैं नाम रूपको प्रकाशित करूंगा। जीवात्मा परमेश्वरकी परा प्रकृति है। उसकी स्वरूप शक्ति है। यह अखण्ड चैतन्य मयी परा प्रकृति, रस-स्वरूप, आनन्द-स्वरूप, उस परमेश्वरके रससे रसित होकर, नाम रूपको प्रकाश करने मे, सतत परिवर्तन शील अनेक भावोंसे भरकर टुकड़े-टुकड़े जड़-दृश्योंके साथ रूप पा रहा है। लीलायित हो रहा है। परमेश्वरकी परा प्रकृति यह जीवात्मा है। वह अपने अखण्ड चैतन्यके स्वरूपको भुलकर नामरूपात्मक जगतमे प्रवेशकर, धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, जन्म, मृत्यु की सीकलोंसे बंधा हुआ है। जीवात्मा स्वरूपसे विछुड़कर अपनेको अनेकं मान रहा हैं। नाम रूप अनेक होनेके कारण, नाम रूपको प्रकाश करनेमे, अपनेको नाम रूपमे ही मिला देता हैं। जीवात्मा अपने अखण्ड रूपको, अपने एकत्वको भूल बैठा है। वह इस अवस्थामे परमेश्वरमे निष्ठ नहीं है और परमेश्वर परायण भी नहीं है। जीवात्मा जब परमेश्वरकी परा प्रकृति है, जब वह एक और अखण्ड है, चैतन्य स्वरूप हैं; तब वह अनन्त कालसे लेकर खण्ड भावमे, परिच्छिन्न भावमे, नाम रूपात्मक जगतमे आसक्त होकर नहीं रह सकता है। उसे केवल परमेश्वरमे निष्ट एवं अपने स्वरूपके अखण्ड और एकताके ज्ञानमे स्थित रहकर ही, उस परमेश्वरको अपनी ही आत्माके रूपमे पाना होगा। जीवात्मा किस तरह परमेश्वरको अपनी आत्माके रूपमे पाकर धन्य हो सकता है, इसी बातको भगवान

व्यासदेवने श्री मद्भागवतके रास पञ्चाध्यायमें प्रकट किया है।

सारा भागवत ही रस-तत्वका एक श्रेष्ठ इतिहास है। लौकिक जगतमें हम सब जैसे किसी जातिकी गंभीर भावनाको और उस भावनाके विभिन्न विकाशको इतिहास कहते हैं, उसी तरह श्रीमद्भागवत्का गंभीरतम मान जो रस-स्वरूप। सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवान हैं, वही उसके रस हैं और उसके दूसरे दूसरे विस्तार सब श्री मद्भागवत्मे अतिशय सुन्दर ढंगसे वर्णित हुए हैं। इसीलिये हमने भागवत को रस-तत्वका इतिहास कहा है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर, शृङ्गार, रौद्र, बीभत्स; मूढ़ और अद्भुत इत्यादि रूपसे रस अपनेको प्रकाश करता है। ये सब रसोंके भिन्न भिन्न विकाश हैं। अतएव उपरोक्त सभी भाव जहाँ पर ठीक ठीक प्रकाश पाते हैं। उसी स्थानको रास-मण्डल कहा जाता है। नाम रूपात्मक जगत ही रस-स्वरूप श्रीकृष्ण भगवानका रास-मण्डल है। प्राणियोंके शरीरमें भी उक्त भावोंका विकाश देखा जाता है; इस कारणप्रत्येक जीवोंका देह भगवानका एक एक व्यक्तिगत रास-मण्डल है। व्यक्तिगत रूपमें उसी प्रकार वैकुण्ठलोक, शिवलोक, ब्रह्मलोक, देवलोक, मनुष्यलोक, प्राणि-लोक; उद्भिद्लोक हैं, और उन्हीं लोकों के प्रति यह जीव देह भगवानका एक एक रास-मण्डल है। भगवान उसी रूपमें अपनी परा प्रकृति—जीवात्मा या स्वरूप शक्तिका प्रसार कर समूह रूपमे, तथा व्यक्तिके रूपमें और बड़ेसे भी बड़ा रूप धरकर जगत-रूप-रास-मण्डलमें अपूर्व लीलाकर रहे हैं। उसी जगत-रूप रास मण्डलमें परमेश्वरके साथ हम सबोंको साक्षात्कार करना होगा।

ईश्वरः परमः कृष्णः, सच्चिदानन्द विग्रहः।
अनादि रादि गोविन्दः, सर्वकारण कारणम् ॥

अखिल "रसामृत मूर्ति" सच्चिदानन्द घन श्री कृष्ण भगवान ही परमेश्वर हैं। सभी कारणोंके कारण हैं। ये केवल भक्तिके द्वारा ही मिलते हैं। भगवानने स्वयं ही कहा है "भक्त्या मामभि जानाति" हमे केवल भक्तिके ही द्वारा जान सकते हो। भक्ति ही रस है, इस लिये जो अखिल रसामृत मूर्ति है; उसके दर्शनके लिये रस पूर्ण मार्ग की ही आवश्यकता है। भक्तिका तत्व या आश्रय प्रेम है। प्रेमके ही द्वारा भगवानको पाया जा सकता है। इस प्रेममे किन्तु वासना नहीं रहनी चाहिये। वासना आत्म-इद्रियोंकी प्रीति है। इसे ही काम-वासना कही जाती है। अपने आपका संभोग करना ही वासना है। भ्रान्त ज्ञान द्वारा ही कामका जन्म होता है। काम जन्म लेकर अपना काम करना आरंभ करता है। कामसे ही कर्मके प्रवाहमे जीवनबहता जा रहा है। इस भ्रांत ज्ञान या अविद्याको ही लेकर संसार-चक्र चल रहा है। वेदका कहनाहै —"कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि" अर्थात् आगे काम जन्म लेता है, फिर यह अलग अलग नामोंसे परिणाम पाता है। सखा-भाव, वात्सल्य-भाव, दास्य-भाव, मधुर-भाव, शान्त-भाव, रौद्र-भाव, श्रृङ्गार-भाव, बीभत्स-भाव, अद्भुद्-भाव, प्रभृतिके रूपमे काम ही रस-स्वरूप भगवानके साथ-क्रीड़ा कर रहा है। भक्ति, श्रद्धा, वृत्ति-ज्ञान और कर्म-जीवन आदि सब कामके ही रूप हैं। कामके ही भीतरसे हम सब रस-स्वरूप-सच्चित्-आनन्दघन-परमात्मा

के प्रेम रसको पाते हैं। कामके जिस रूपकी प्रबलता जिसके हृदयमें जितनी रहती है, वह उसी रूप और उसी भावकी संतुष्टिके लिये ईश्वरके साथ, उन्हीं भावोंमेसे किसी भावका सम्बन्ध जोड़ता है। इस सम्बन्धकी पूर्तिके लिये की जानेवाली चेष्टा ही साधना है। काम विभिन्न नाम रूपोंमे परिणत होकर जिन सब भिन्न भिन्न रसोंकी उत्पत्ति करता है; उन रसोंमें शृङ्गार-रसको ही साधारणतया लोकमे काम कहा जाता है। जैसे प्राणका एक कार्य श्वांस है। श्वांस प्रश्वासों को ही; किन्तु लोकमे प्राण कहा जाता है। जीवन-साधारणतया काम और भूखकी तड़पसे ही कर्म करनेमे जुटता है। जिस साधकके मनमे काम भाव प्रबल रहता है, वह जब लौकिक विषयोंकी भोग वासना से उचटकर भगवानका शरणागत होता है। साधना द्वारा जब भगवत्कृपासे धीरे धीरे उसका चित्त विशुद्ध होते होते—हो पड़ता है, तब वह "उँ उँ उँ उँ" ऐसी ध्वनि सुन पाता है। उस ध्वनिसे साधक का वह चित्त शांत होता जाता है। चित्तके शान्त होनेपर "चित्ताकाश"मे उसकी साधनाकी इष्ट मूर्ति फुट पड़ती है। इस अपूर्व मूर्ति के दर्शनसे साधकको उस मूर्तिके भोग करनेकी स्पृहा उमड़ पड़ती है। इस अवस्थामें साधकको 'आत्म-काम' 'आप्त-काम' तथा 'अ-काम' बना देनेके लिये कृपा-परायण भपवान स्वयं ही, अपने शरणागत साधकके चित्तमे काम-भावको जगा देते हैं। भगवानमें जितनी ही शरणागति गाढ़ी होती है। साधकके काम-भोगकी स्थूल-वासना उतनी ही नष्ट हो जाती है। यह काम भगवत्साक्षात्कारसे तब अ-काम हो जाता है। **अ-कामकी प्रवृति ही काम-क्रीड़ा है। अ-**

काम होनेको साधकको इसी क्रीड़ाको रास-क्रीड़ा कही जाती है।

पहले कहा जा चुका है कि साधकके विशुद्ध-चित्तकी भगवन्मुखी वृत्तियोंके समूह अर्थात् भक्ति-वृत्तियां ही गोप और गोपियां हैं। भगवन्मुखी इन्हीं-वृत्तियोंमे जो उस इष्ट देवकी मूर्तिके प्रति भोगकी सरस स्पृहा उमड़ती है और भगवानका उस स्पृहाके प्रति अनुग्रह होता है, वही रास है। उसीको भगवानके द्वारा "कृष्ण गृहीत मानसाः" कहा गया है। इस रासका दूसरा भाव निम्नप्रकार अनुभव करें।

आज यह शारदीया रजनी है। वृन्दावनका आकाश आज भगवानमें एकान्त शरणागत साधकके रज और तमहीन हृदयसाही स्वच्छ तथा निर्मल है। कहीं थोड़ा भी मेघ नहीं दीखता है। चन्द्रमाने अपने सन्तापहारी शान्त-स्निग्ध ज्योति से, ऊपरके मेघ मुक्त सुनील निर्मल आकाशको और नीचे व्रजधामके वन, प्रान्तर, यमुना, एवं व्रज वासियोंके घरोंको प्रकाशित कर दिया है। विश्वात्मा—पुरुषोत्तम—भगवान श्रीकृष्ण मल्लिकादि सुगन्धित पुष्पोंसे शोभित, चांदनीसे धुले व्रज धामकी वनानीके अपूर्व सौंदर्योंको देखकर वनके बीच बैठ गये। वृन्दावनके इस फुल्ल-कुसुमित, तथा ज्योत्स्नासे पुलकित शरदकालकी रात्रिमें भगवान श्रीकृष्णने गोपियोंके साथ क्रीड़ा करनेकी इच्छासे **"जगौ कलं वामदृशां मनोहरं"** "बामाः सुन्दराः = बराः दृशौ यासाम् तासाम्"—जिनकी दृष्टि या दर्शन श्रेष्ठ हैं, अर्थात् सम्यक हैं,

वे वाम दृश हैं, जो लोग बराबर सब ठौर केवल अपने इष्ट भगवानका ही दर्शन करते हैं, भगवान विश्वात्मा पुरुषोत्तम श्री कृष्णको छोड़कर जिनकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता लोपसी हो गई है, उन्हीं योगी-गण अथवा श्रेष्ठ गोपियोंके मनोरथको पूरा करनेके लिये भगवान श्रीकृष्णने गोपियोंके अर्थात् साधक योगियोंके मनको मोहने वाली वंशी पर अपूर्व संगीत छेड़ा। भगवानकी मनोहर वंशीकी ध्वनिने, सुनील अनन्त-आकाशमें सुधाकी लहरीको उठा उठाकर; चन्द्रमाकी चांदनीसे उद्भासित वृन्दावनके वनस्थलीको अमृतमय करते हुए, व्रज गोपियोंके हृदयमें एक प्रकारका अपूर्व झंकारका संचार कर दिया। गोपियोंकी उस दशाको श्री मद्भागवतमे कहा है—

"निशम्य गीतं तदनङ्ग वर्धनम्,
व्रजस्त्रियः कृष्ण गृहीत मानसाः।

भगवानके उसी अपूर्व कामोद्दीपक संगीतको सुनकर कृष्ण भगवानके द्वारा गृहीत मन वाली, व्रजकी स्त्रियां एक दूसरेसे अपनेको छिपाती हुई, जहां पर उनके कान्त श्रीकृष्ण विराज रहे थे, तुरत पहुंच गईं। व्रज-स्त्रियोंके लिये श्रीकृष्णजीके पास न आकर घरमे रहना कठिन था; क्योंकि उनके हृदय कृष्णसे टान लिये गये थे। गोपियोंके पास जो कुछ भी था। वे सब श्रीकृष्णके चरणों पर उत्सर्ग हो गया था। श्रीकृष्ण भगवानमें शरणागति उनकी पूरी हो गई थी। शरणागति पूरी होनेके ही कारण भगवानने उन सबोंके हृदय और मन आदि सब पर अधिकार कर लिया था। सम्पूर्ण रस जहां अपनी अपनी

विशेषताको छोड़कर, एक मात्र रसराज परमात्मा श्रीकृष्णकी मूर्ति मे ही मूर्त हो पड़ा है, उस अवस्थामे उसी सच्चिदानन्दके टाननेपर; उसे कौन रोक सकता है ? कौन बांध सकता है ? सर्व्वाणुस्युत, पुरुषोत्तम, श्रीकृष्णने गोपियोंके निर्मल हृदयमें, मदन मोहनके, रूपमे प्रतिष्ठित होकर उनके देह, इन्द्रिय, मन, वुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सबोंको अपने आनन्दघन मूर्तिसे भरपूर कर दिया है। जिससे गोपियां उन्हें देह, इन्द्रिय, अन्तः करण आदि अपने सब किसीसे उन्हें उपलब्धि कर सकें। गोपियोंने जिस तरह अपना सब कुछ श्रीकृष्णमे समर्पण किया है, श्रीकृष्णने भी उसी तरह उनके आत्म-समर्पणकी भेंटको स्वीकार कर, उन्हें अपना स्वरूप दे दिया है। गोपियां श्रीकृष्णकी अङ्गभूत हो गईं हैं। उनके शरीर अव और पंच भौतिक शरीर नहीं रहे। वे चिन्मय हो गयी हैं। भगवानमे जो काम है, वह काम वैसा नहीं है, जैसा कि हम सब साधारण रूपसे समझते हैं। यह काम प्रेम है। इस काममें यौन भावना (Sexidia) जरा भी नहीं है। इसीलिये श्रीकृष्णको "साक्षात् मन्मथ मन्मथः" कहा गया है। कामको अर्थात् शृंगार रसको जो मथते हैं, जिसके स्पर्शसे राजसिक और तमसिक काम हृदयसे दूर हटता है, वही इस कामका तात्पर्य है। कवियोंने लिखा है—

पहिलहि राग, नयन-अङ्ग-भङ्गी भेल,
अनुदिन बाढ़ल अवधि ना गेल,
नहीं से रमन नहिं हम रमनी,
दुंहुं जन मनो भाव पेखल जानि ॥

आनन्द स्वरूपभगवानके आनन्दकी थोड़ी-सी अनुभूतिको पाकर, उनका जरासा इशारा, संकेत या इङ्गितका आभास पाकर ही उनके प्रति अनुराग उत्पन्न होता है। वही अनुराग या वही प्रीति दिनों दिन बढ़ने लगी है। प्रेमकी सीमा नहीं है। वह जिस तरह असीम है, उनके प्रति शरणागत भक्तका प्रेम भी असीम हो पड़ता है, इस अवस्थामें वह रमण (पुरुष) हैं और मैं रमणी (स्त्री) हूं; ये भावनायें नहीं रहती हैं। दोनों ही दोने के मनो भावोंको समझ लेते हैं। भक्त और भगवानका अटूट सम्बन्ध हो पड़ता है। श्रीकृष्णके संगीत को इसीलिये 'अनङ्ग-वर्धन' अर्थात् प्रेम बाढ़ाने वाला कहा गया है। भगवानके उसी वंशीकी ध्वनिको सुनकर गोपियाँ मुग्ध (साधक-योगी) चित्तसे जाकर श्रीकृष्णके निकट खड़ी हो गईं। योगियोंके शान्त समाहित चित्तमे जब "उँकार" की ध्वनि उठती है, तो जिस प्रकार उनका वह चित्त अपने आप उसी ध्वनिमें लीन हो जाता है, उसी प्रकार श्रीकृष्णकी वंशी ध्वनि गोपियोंके कानके अन्दरसे मर्ममें पहुंचकर; उन्हें विवश बना देती है। वे सब मुग्ध चित्त होकर विना किसी परिश्रमके श्रीकृष्णके पास आ पहुंचीं। श्रीकृष्णने गोपियोंको देखकर उन्हें नीति-युक्त उपदेश देते हुये कहा—

'जुगुप्सितंच सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः'
श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्त्तनात्।
"न तथा सन्नि कर्षेण, प्रति यातततो गृहान्।"

भा० १०।२६।२६-२७

कुल-स्त्रियोंके पक्षमे उप पतियोंका गमन निन्दनीय है। और भी एक बात यह है कि मेरें सम्बन्धकीकथा सुनकर, मेरा ध्यान धरकर मेरा कीर्त्तन कर, जिस प्रकारकी भावना बढ़ती है, मेरे पास रहने पर वैसा नहीं होता है। इसलिये कह रहा हूं कि "तुम सब घर लौट जाओ।" भगवानके द्वारा भक्तकी फिर परीक्षा हो रही है। भगवान इस बार भक्तके हृदयकी अन्तिम परीक्षा ले रहे हैं। अपने प्रति गोपियोंके प्रेमकी गाढ़ता को अधिक देखनेके लिए भगवानने उन सबोंसे ऐसा कहा था। भगवान देखते हैं कि सचमुचमें हम सब उन्हें चाहते हैं या नहीं ? कोई एक गरीब लकड़हारा मरना चाहता था, उसकी इच्छाके अनुसार यमराज जब उसके पास आकर खड़े हुए, तो वह मरना भूल गया। वह यमराजसे बोला कि, "कृपाकर मेरे इस बोझाको उठा दीजिये तो मैं घर जाऊं ?" भगवान यदि मेरे सामने उपस्थित होकर अपना पीछा करनेको हमें कहें, तो इसी लकड़हारा की तरह हम सबोंमें अधिकांशोंकी दशा हो पड़ें।

किन्तु ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, योगियोंमे श्रेष्ट और भक्त-शिरोमणि गोपियां भगवानके वाक्योंको सुनकर बोलने लगीं। हे विभो ? "संतज्य सर्व विषयांस्तवपाद मूलं" सभी विषयोंको छोड़कर हम सबोंने आपके चरण कमलोंका आश्रय लिया है। इस समय भगाने पर भी आपको छोड़कर जानेका हममें सामर्थ नहीं है। हम सबोंकी कोई भी स्वतन्त्र इच्छा नहीं हैं। धर्म-वेत्ता आपने जो पति, पुत्र, आत्मीय और कुटुम्बोंकी यथा योग्य सेवा करना ही, हम सबों का धर्म कहा है; वह ठीक ही कहा है, परन्तु—

"यत् पत्यपत्य सुहृदामनुवृत्तिरङ्ग,
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्म विदात्वयोक्तम् ।
अस्त्वेवमे तदुपदेश पदेत्वयीशे,
प्रेष्ठोभवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥"

भा० १०।२९।३२

हे प्रियतम ! आपको छोड़कर तो हम सबोंका और कोई पति नहीं है, पुत्र भो नहीं है। माता भी नहीं है। पिता भी नहीं हैं, भाई भी नहीं है। वहन भी नहीं है। मित्र भी नहीं है। आप जो हम सबोंके पति पुत्रसे भी बढ़कर हैं। पति पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय हैं। आप सभी भूतोंकी आत्मा हैं। सबके बन्धु हैं। आपकी सेवा करने से ही सबकी सेवा होगी। आप आत्मा होनेके नाते, सच्चिद् आनन्द-घन पुरुष होनेके नाते ; हम सबोंके सबसे अधिक प्रियतम हैं।

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।
त्वमेव बन्धुश्च पतिस्त्वमेव ॥
त्वमेव पुत्रस्त्वनया त्वमेव ।
त्वमेव सर्व मम कान्त कृष्ण ॥

हे कान्त, हे कृष्ण, आप ही हम सबोंके पिता हैं। मा, वाप, पुत्र कन्या, बन्धु, बान्धव, आदि सब कुछ आप ही हैं। इसलिये आपकी सेवा करनेसे सबकी सेवा पूरी होगी।

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्तितन्मय तां हिते॥

भा० १०।२६।१५

किसी भी चमकदार सोनेकी चूड़ियोंमें सोना छोड़कर उसकी चमकमें और क्या है? समुद्रके फेनोंमें जल तत्वको छोड़कर दूसरा कौन सा तत्व है? कोई नाम या रूप देनेसे वस्तुका वास्तविक रूप जिस प्रकार नहीं जाता है। उसी प्रकार सभी रसोंके सार श्रीकृष्ण भगवानको जीव या जगत आदि नाम और रूप द्वारा विशेषित करने से भगवानका सच्चिदानन्दत्व दूर नहीं हो सकता है। जिस प्रकार छोटे बड़े सभी तरङ्गोंमें हम सब पानी ही पानी पाते हैं, उसी प्रकार पाप, पुण्य, धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, पंचभूत और भौतिक प्रत्येक पदार्थों द्वारा उस रस-घन, प्रेम-मय, सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवानको पा सकते हैं। आवश्यकता है केवल दृष्टिके बदल देने की। जिस समय तरङ्ग देखा जाता है, उस समय जलका ज्ञान नहीं रहता है। फिर जब जल देखते हैं, तो तरंगका ज्ञान नहीं होता है। उसी प्रकार हम सबोंकी बुद्धि है, जब यह बुद्धि नाम रूपकी विषयनी होती है, उस समय नाम रूपके अधिष्ठान सच्चिदानन्दघन, परमात्मा, प्रेम-स्वरूप श्रीकृष्ण भगवान हम सबोंको दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। वे छिपे हुए से रहते हैं। जब हम सबोंकी बुद्धि भगवद् विषयनी हो जाती है, उस समय हम सब नाम रूपको नहीं देखते हैं। उस समय सर्वत्र सामने, पीछे, अगल, बगल, ऊपर, नीचे, सभी ठौर भगवत्को ही देखते हैं।

भगवानकी यह मधुर रास-लीला चराचर विश्व-ब्रह्माण्डमें प्रत्येक प्राणियोंके शरीरमें सर्वदा होती रहती है। भगवान परमआनन्द स्वरूप हैं, इसीसे प्रत्येक प्राणी आनन्द चाहता है। "सुखंमे स्यात् दुःखंमा भूत्" मुझे सुख हो। मुझे दुःख नहीं मिले। इस सुखकी आकांक्षा, इस आनन्दके पानेकी लपक मनुष्यके चित्तमें दिन रात उठती रहती हैं। क्यों उठती है ?

परमानन्द स्वरूप, रस-स्वरूप, भगवान उसी प्रकार हैं, जैसे जल तरङ्गोंमे व्याप्त रहता है। सोना जैसे सोनेके हारमें व्याप्त होकर है। मिट्टी जैसे मिट्टीके घड़ोंमें व्याप्त है। उसी प्रकार वे मेरी जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिकी तीनों अवस्थाओंमे, मेरे स्थूल सूक्ष्म और कारणके देहोंको, मेरे मन, बुद्धि, चित्त और अहंकारोंको, मेरे पांचों ज्ञानेन्द्रियों, पांचों कर्मेन्द्रियों तथा पांचों प्राणोंको, मेरे सारे शरीरको व्यापकर नित्य विराजमान हैं। वे ही मेरे मनको धक्का दे रहे हैं। वे ही दिन रात हम सबोंको बुला रहे हैं। यही कारण है कि आनन्द पानेकी उत्कण्ठा हम सबोंके चित्तमें रह-रहकर उठती रहती है। भगवान वरावर ही जोर जोरसे हमें पुकार कर कहते हैं कि "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत" उठो मेरे बड़े प्रियजीव ! उठो ! और कब तक अज्ञान रूप मोह की नींदमें पड़े रहोगे ! उठो ! जागो ! महात्माओंके पास जाकर निश्चित जानो कि तुम कौन हो ? तुम्हारा स्वरूप क्या है ? तुम तो मेरे बहुत प्रिय हो। मैं ही तुम्हारा स्वरूप हूं। इसलिये हम सब आनन्द चाहते हैं। ज्ञानसे चाहे अज्ञान से सभी प्राणी आनन्द पानेको लालायित है।

भगवान अमृत स्वरूप हैं। वेही मृत्युञ्जय हैं। काल रूप मृत्युको भी खाकर महाकालके रूपमें अपने अमृत-स्वरूपमे नित्य विराज रहे हैं। इसीसे प्राणी मरना नहीं चाहता है। अमर जीवन पानेकी सतत अभिलाषा रखता है। अमृत-स्वरूप-भगवान हमारे अन्दर और बाहरको परिपूर्ण कर नित्य विराजमान हैं। इसीसे अमृत पानेकी एक प्रबल स्पृहा हमारे चित्तपर बराबर जागृत रहती है।

परमानन्द स्वरूप, अमृत-स्वरूप, भगवान नित्य बोध स्वरूप हैं। सारी मायाशक्तिको व्याप्त कर रहने से वे सर्वज्ञ और सर्व विद् हैं। अतीत वर्तमान, एवं भविष्यका युग-पत ज्ञान उनके ज्ञानमे प्रकाशित हैं। इसोलिये मनुष्यके हृदयमें सभी पदार्थोंके जाननेकी एक आकांक्षा उठती रहती है। छोटे छोटे लड़के और लड़कियां भी अपने मां बाप को पूछते रहते हैं। बाबूजी वह क्या है? मां वह क्या है? जानने की एक प्रकारकी इच्छा छोटे बड़े सभी मनुष्योंमे देखी जाती है। मनुष्य सभी जानना चाहता है। सर्वज्ञ, सर्वविद् भगवान उसके अन्दरसे नित्य विराज रहे हैं, इससे वह उस सर्वज्ञ भगवानको जानना चाहता है। सर्वज्ञ होना चाहता है।

ईश्वरके समान कोई नहीं है। ईश्वरसे श्रेष्ठ भी कोई नहीं है। वे स्वयम्भू हैं। वे स्वाधीन हैं। अज्ञान, अविद्या, माया, प्रकृति, शक्ति, तम, देश-काल वस्तु, कोई भी उसे परिच्छिन्न नहीं कर सकता है। अधीन भी नहीं कर सकता है। वसमे भी नहीं ला सकता है। वे सर्व तन्त्र-स्वतन्त्र हैं। देशकाल और वस्तुओंके द्वारा वे अपरिच्छिन्न हैं। स्वाधीन हैं। भगवान हम सबोंके सब कुछको परिपूर्ण कर विराज

रहे हैं। इसीसे मनुष्य स्वाधीनता चाहता है। लोकमें देखा भी जाता है कि कोई भी किसीके अधीन नहीं रहना चाहता है। स्वातन्त्र्य पाने की एक प्रबल इच्छा सभी मनुष्योंके हृदयमें उठती है।

परमानन्द स्वरूप, नित्य-बोध-स्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वविद् स्वाधीन परमात्मा परमेश्वर सभीके नियामक हैं। सभीके अन्तर्यामी भी हैं। सभीके प्रभु हैं। इसलिये ही तो मनुष्यके हृदयमें प्रभुत्व करनेकी प्रबल अभिलाषा उठती है। एक दूसरेपर प्रभुत्व जमानेको इच्छुक रहता है। कारण है कि सबके प्रभु भगवान हैं। हम सबोंके अन्दर अन्तर्यामीके रूपमें भगवान सर्वदा विराजते हैं।

वे निरतिशय आनन्द-स्वरूप, अमृत-स्वरूप, सर्वज्ञ, सर्ववित् एवं स्वाधीन हैं। सभीके प्रभु अन्तर्यामी भगवान सर्वशक्तिमान हैं। इसलिये मनुष्य सर्व शक्तिमान होना चाहता है।

मनुष्यके हृदयमें आनन्द, अमृत, सर्वज्ञत्व, स्वातन्त्र्य, प्रभुत्व एवं सर्व-शक्तिमत्व, इन छहों वस्तुओंके पानेकी अभिलाषा दिन रात उठती रहती है। इसका कारण है कि मनुष्य सर्वज्ञ, सर्वविद्, सर्वशक्तिमान, सबका प्रभु, परमानन्द स्वरूप, अमृत-स्वरूप, मायाधीश, भगवानका साक्षात् पानेको सर्वदा अभिलाषी है। कारण है कि भगवान मनुष्य के स्वरूप हैं। मनुष्य अपने स्वरूप, परमानन्द, अमृत-स्वरूप, श्रीकृष्ण भगवानको अपनी आत्मामे, अपने मनमे, अपने प्राणमे, अपने इन्द्रियोंमें, अपने स्थूल देहमे, अपने सूक्ष्म देहमे, और-अणु अणुमे साक्षात् पानेके लिये और इस अपने स्वरूप श्रीकृष्ण भगवानके साथ रासलीलामे आनन्दित होनेको सतत अभिलाषी है।

रस-स्वरूप श्रीकृष्ण भगवानकी इस मधुर रास-लीलामे योग देनेके राहपर और रस-स्वरूप, श्रीकृष्ण भगवानका आत्मरूपमे साक्षात पानेमे, माया बहुत विघ्न पहुंचाती है ; या अज्ञानके कार्य राजस तामस सात्विक—अहंकार रूप कंस विघ्न पहुंचाता है। 'कंस' शब्दका अर्थ 'कं' एवं 'सः' से होता है। "कं" का अर्थ निरतिशय आनन्द होता है और "सः" का अर्थ अहंकार होता है। यह अहं प्रत्ययका वाच्य और लक्ष्यार्थ है। हम सब जो 'मैं' 'मैं' किया करते हैं। इस "मैं" या अहंकारके दो रूप हैं। स्थूल सूक्ष्म और कारण देह के अभिमानका "मैं" एक रूप है। मै ब्राह्मण हूं। क्षत्रिय हूं। वैश्य हूं, शूद्र हूं, ब्रह्मचारी हूं, गृहस्थ हूं, वानप्रस्थ हूं, और सन्यासो हूं। मैं हिन्दू, मुसलमान, इसाई हूं, मैं मनुष्य देवता, यक्ष ब्रह्म, दैत्य, दानव प्रेत, पिशाच हूं। मैं मुनि, ऋषि, ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र, हूं। यह अहंकार रूप'मैं' अहं प्रत्यय या अहं ज्ञानका वाच्यार्थ है। 'मैं' इस अहं ज्ञानका वाच्यार्थ हूं। हम जब भी किसी शब्दका व्यवहार करते हैं, उसी समय उस शब्दके अनुरूप उसके नाम रूपकी वस्तु मन और इन्द्रियोंके सामने आ पड़ती हैं। जैसे "गाय" इस शब्दके उच्चारण करनेसे हमारी इन्द्रियोंके सामने चार पांव वाली, पूंछ सींग, लम्बे कान, गल-चादर वाली वस्तुके नाम रूप की, एक वस्तु आकर खड़ी हो पड़ती है। यही वस्तु "गाय" शब्दका वाच्यार्थ है। इसी प्रकार जब 'मैं' शब्द का उच्चारण करता हूं, तब पहले ही मेरी इन्द्रियों और मनके सामने एक नाम रूपवाला स्थूल देह, जो कि "पङ्कजिनी पालित" रूपमे परिचित है, उपस्थित हो पड़ती है। यही 'मैं' शब्दका वाच्यार्थ है। इस

समय 'मैं' शब्दका लक्ष्यार्थ क्या है, इसे विचारता हूं।

मैं इस समय जगा हुआ हूं। इस समय मैं नाम रूपवाला स्थूल देह हूं। जो कि "पङ्क जिनो पालित" नामसे परिचित हैं। जब मैं स्वप्न देखता हूं, तब मैं फिर यह स्थूल देह नहीं रहता हूं। उस समय मैं रमानामकी एक बालिका हो जाता हूं। अर्थात् मनोमय एक सूक्ष्म देह हो जाता हूं। फिर जब सो पड़ता हूं। स्वप्न भी नहीं देखता हूं; जाग भी नहीं रहा हूं; तब पता नहीं कौन-से अज्ञानाभावके प्रभावमे सोकर नींद लेता हूं, उस समय मै 'पङ्क जिनो' नहीं रहता हूं। रमा भी नहीं रहता हूं। स्त्री, पुरुष, मनुष्य, धनी, गरीब कुछ नहीं रहता हूं। उस समय एक अज्ञानमे अभिभूत होकर मैं, अज्ञ हो पड़ता हूं। जब जाग पड़ता हूं, तब कहता हूं कि जो मैं इस समय जाग रहा हूं, उसी मैंने स्वप्न देखा था। वही मैं सुप्त था। यह जो एक 'मैं' है,वही 'मैं' जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तु की तीनों दशामे नित्य एक रूपसे है।

जागनेवाली मैं 'पङ्कजिनी' स्वप्न और सुषुप्तिकी अवस्थामे नहीं हूं। स्वप्न अवस्थाकी 'रमा' मैं जाग्रत और सुषुप्तिकी अवस्थामे नहीं हूं। सुषुप्ति अवस्थाका अज्ञ मैं जाग्रत और स्वप्नमे नहीं हूं। परन्तु एक ही मैं तीनों अवस्थाओंमें नित्य रूपसे विराज रहा हूं। तीनों अवस्थाओंमें नित्य रहनेवाला जो मैं है, वही 'मैं' इस पदका लक्ष्यार्थ है। यह 'मैं' कौन है ? इसका बिचार किया जाता है। नींदसे जागने पर मुझे स्मरण होता है कि मैं इतनी देर तक सुखसे सो रहा था। कुछ भी नहीं जान सका था। यहां अज्ञान और सुखकी स्मृति होती है। स्मृति-ज्ञान वही ज्ञान है, जो पहले अनुभूत हुआ था। अनुभूत

का माने ज्ञानमें प्रकाशित होना है। ऐसा होनेसे सुषुप्ति अवस्थामे "मैं कुछ नहीं जान पाया" इस अज्ञान और सुखका अनुभव हुआ था; अर्थात् ज्ञानमे प्रकाशित हुआ था। सुषुप्तिकी अवस्थामें एक ज्ञान-स्वरूप वस्तु थी। जाग्रत और स्वप्नावस्थामे जब अनुभूत होता है; तब उसका भी ज्ञानमे प्रकाश होता है। ज्ञान कभी भी अनेक नहीं होता है। ज्ञानमे भेद नहीं है। ज्ञान एक और स्वप्रकाश है। यह स्वप्रकाश चैतन्य स्वरूपवस्तु जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंमें ही अखण्ड रूपमें रहती है। एक रूपमे रहती है। स्वप्रकाश चैतन्यरूपमे वर्तमान रहती है। यह जो अखण्डैक रस है, नित्य, स्वप्रकाश, चैतन्य स्वरूप, वस्तु है, यही वस्तु 'मैं' है। यही इस पदका लक्ष्यार्थ है। अर्थात् 'मैं' का प्रकृत स्वरूप है; यही "मैं" हूं।

फिर विचारकर देखना चाहिये कि "मैं" कौन हूं। अच्छा जो मेरा है, वह तो 'मैं' नहीं हूं। मेरे कपड़े, मेरी कन्या और मेरे धन, दौलत जो हैं, उनमे मे से तो एक भी 'मैं' नहीं हूं। इन सबोंसे 'मैं' तो बिल्कुल ही अलग हूं। पृथक हूं और विलक्षण हूं। इसी प्रकार मेरा देह है। मेरा प्राण है। मेरी इन्द्रियां हैं। मेरा मन है। मेरी बुद्धि है। मेरा अहंकार है। मेरा चित्त है। मैं इन सबों मे से कोई भी नहीं हूं। "मैं" देह, इन्द्रियां, मन, बुद्धि, प्राण, चित्त, अहंकारों मे से सम्पूर्ण स्वतन्त्र हूं, विलक्षण हूं। तो फिर "मैं" क्या हूं। फिरसे विचार कर देखा जाय। जो द्रष्टा है, जो ज्ञाता है, वह कभी भी दृश्य और ज्ञेय नहीं हो सकता है। मै घड़ा देख रहा हूं। घड़ा मैं नहीं हूं। घड़े से मैं बिल्कुल विलक्षण हूं। घड़ा जड़ है। मैं चैतन्य हूं। घड़ा परि-

छिन्न है, किन्तु मैं परिछिन्न नहीं हूं, क्योंकि दृश्यपर दृश्य आते रहते हैं। जाते रहते हैं। मैं किन्तु चैतन्य द्रष्टाके रूपसे नित्य वर्त्तमान रहता हूं। इस स्थूल देहको भी मैं देख रहा हूं। यह मेरा दृश्य हुआ। मैं इसका द्रष्टा हुआ। द्रष्टा 'मैं' कभी भी स्थूल देह नहीं हो सकता हूं। अतएव देहसे 'मैं' बिल्कुलविलक्षण हूं। इसी प्रकार 'मैं' प्राणका द्रष्टा हूं। मनका द्रष्टा हूं। बुद्धिका द्रष्टा हूं। चित्तका द्रष्टा हूं। अहंकारका द्रष्टा हूं। ये सब जड़ हैं। मैं चैतन्य हूं। मैं नित्य हूं। ये सब अनित्य है। ये सब परिछिन्न है। 'मैं' अपरिछिन्न हूं। अखण्ड एक रस हूं। इन विचारोंसे समझ पड़ता है कि 'मैं' स्वरूपतः अखण्ड एकरस-नित्य-स्व-प्रकाश-चैतन्य-स्वरूप वस्तु हूं। यही वस्तु आत्मा कहलाती है। वास्तविक 'मैं' यही है। यही आत्मा, पुत्र, कन्यासे, धन दौलतसे, इस लोक और परलोकके सभी भोग्य वस्तुओंसे मेरा अधिकतर प्रिय है। मेरा परम प्रेमास्पद है। इसीसे यह वास्तविक 'मैं' परम आनन्द स्वरूप हूं। इसीसे पहले कह चुका हूं कि 'कंस' स्वरूपतः परमानन्द स्वरूप है। नित्य है। स्वप्रकाश-चैतन्य-स्वरूप-आत्मा है। कंसका दूसरा भी रूप राजस-तामसके सात्विक अहंकारका है। इस अहंकार रूप कंसका स्वभाव अभिमान है। स्थूल देह, सूक्ष्म देह, कारण देहोंका अभिमान करना ही कंसका स्वभाव है। हम सबोंके चित्त, मन या बुद्धि मानो एक जैसी नहीं हैं। इस चित्त रूप ही के दोनों ओर दो प्रवाह चल रहे हैं। चित्तका एक प्रवाह, भोग और ऐश्वर्य परायण होकर संसारकी ओर दौड़ता है। दूसरा एक प्रवाह विवेक-वैराग्य है। श्रद्धा और भक्ति परायण होकर सच्चिदानन्द

परमात्मा परमेश्वरकी ओर हम सबोंका मन दौड़ रहा है। जब जब हम सबोंका मन थोड़ा भी विवेक-वैराग्य और श्रद्धा भक्ति परायण होकर, अपने ही स्वरूप श्रीकृष्ण भगवानकी ओर जानेकी इच्छा करता है ; तभी अहंकाररूपी कंस हम सबोंमे निम्न प्रकृति के राजस तामसादि की वासना ; या इस संस्काररूपी पूतना आदि आसुरी भावनाओंको जगा देता है। हम सबोंकी साधनामे वह विघ्न डालकर; हमसबोंको श्रीकृष्ण भगवानसे दूर ले आनेकी चेष्टा करता है। मनुष्य किन्तु जब ईश्वरकी कृपासे, गुरुकी कृपासे, शास्त्रकी कृपासे, आत्माकी कृपासे और सत्संगसे भगवानमे पूरा शरणागत होता है; तब भगवान ही इस अहंकार रूप कंसको धीरे धीरे बदलते जाते हैं। भगवानकी कृपासे शरणागत भक्तकी काया भागवत हो जाती है। मतलब यह है कि भगवानके दर्शन करनेकी योग्यता उसें हो जाती है। साधक जब 'मैं' और मेरा मानकर जो कुछ है, उन्हें भगवानमे अर्पणकर बिल्कुल नग्न होकर, भगवानके पास खड़े होते हैं, तब भगवान भी अपने शरणागत भक्तको स्वीकार कर लेते हैं। भक्तकी इच्छानुकुल मूर्ति धारण कर, उसकी सारी अभिलाषा को वे पूर्णकर देते है। भगवान जब साधककी इच्छित मूर्तियोंको धरकर साधकके सामने खड़े होते हैं ; तब साधकके मन, बुद्धि, चित्त, अहंकाररूप अन्तःकरणके एवं इन्द्रियगणोंकी भगवन्मुखी सात्विक-वृत्तियोंकी गोपियां समूह तन्मय हो पड़ती हैं। अर्थात् भगवानमें आकृष्ट होकर वे सभी कामोंसे अलग होकर भगवानके सामने खड़ी रहती हैं। भगवान तब साधकके साथ बातें

करते हैं। साधककी भक्तिकी परीक्षा करते हुए वे कहते हैं—

"अस्वर्ग्यमय शस्यञ्च फल्गुकृच्छ्रं भयावहम् ।
जुगुप्सितञ्च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः ॥
श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनु कीर्तनात् ।
न तथासन्निकर्षेण प्रतियात ततोगृहान् ॥

भा० १०।२६।२६-२७

कुल-कामिनियोंका पर पुरुषके साथ अर्थात् उप पतिके साथ सम्बन्ध जोड़ना स्वर्ग पानेमे वाधक होता है। कीर्त्तिकी हीनता होती है। लोकसे और शास्त्रोंसे यह निन्दनीय है। गर्हित है। कठिन और डरावना है। भगवद्विषयक कथाओंके सुनने से, भगवानके दर्शन से, भगवानके ध्यानसे, भगवानकी कथाकी चर्चासे, मेरे प्रति अर्थात् भगवानके प्रति, जिस प्रकार अनुराग उपजता है; उस प्रकारका अनुराग मेरे पास रहनेसे नहीं होता है। अतएव तुम सव अपने अपने घरको लौट जाओ ?

'पर' अर्थात् श्रेष्ठ, 'पुरुष' अर्थात् परिपूर्ण स्वभाव, सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवान, हैं। परिपूर्ण स्वभाव सच्चिदानन्द 'पर पुरुष' श्रीकृष्ण भगवान ही चराचर विश्व ब्रह्माण्डके उपपति हैं। 'उप'का अर्थ समीप है। 'पति' का अर्थ रक्षा करनेवाला है। पालन करनेवाला है, अतएव 'उपपति' शब्दका अर्थ है, जो नित्य निरन्तर पासमें रहकर रक्षा या पालन करता रहे। वही उपपति है। वे हमसबोंके अत्यन्त निकटतम हैं। अत्यन्त प्रियतम हैं। कारण यह है कि सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवान

हमारे स्वरूप हैं। हमारी आत्मा हैं। पिता माता हम सबोंको छोड़ सकते हैं। हम सब भी पिता माताको छोड़ सकते हैं। स्वामी स्त्री को छोड़ सकता है। स्त्री भी स्वामीको छोड़ सकती है। धन ऐश्वर्य हम सवोंको छोड़ सकते हैं, किन्तु हम सब कभी भी इस श्रीकृष्णको नहीं त्याग सकते हैं। कारण है कि यदि हम सत्स्वरूप श्रीकृष्णका त्याग करें; तो हम असत् हो पड़ेगें। यदि चैतन्य स्वरूप श्रीकृष्ण भगवानको हम छोड़ेंगे, तो हम प्रकाश नहीं पायेंगे। यदि आनन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण भगवानका त्याग करें, तो हमारा जीवन ही विलीन हो जायगा। क्योंकि आनन्दका उल्लास ही जीवन है। इसीसे ऋषि ने कहा है "प्रेयः पुत्रात् प्रेयः। वित्तात् प्रेयः। सर्वस्मात् अन्यस्मात् यदयम् अन्तरतर आत्मा।" सभी वस्तुओंसे निकटतम यह अन्त-रात्मा है। पुत्र, वित्त और दूसरे सभी पदार्थोंसे यह हमारा प्रिय है। हमारे स्वरुप, हमारे अन्तरात्मा श्रीकृष्ण भगवान परमानन्द स्वरूप होकर हमारे निकट सर्वापेक्षा प्रिय हैं।

मैं हूं। मैं प्रकाश पाता हूं। तुम हो तुम प्रकाश पा रहे हो। वे हैं, वे प्रकाश पा रहे हैं। पिता माता, पुत्र, कन्या स्वामी, स्त्री, घर, विषय, सम्पत्ति है; पञ्चभूत है, यह सब प्रकाश पा रहा है, नाम प्रकाश पा रहा है, यह विश्व नाम रूपात्मक है और प्रकाश पा रहा है। मेरे देह, प्राण, इन्द्रियां, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार एवं अज्ञान हैं और प्रकाश पा रहे हैं। ये सब जो हैं; वे प्रकाश पा रहे हैं। यह जो सत्ता और प्रकाश है। यह सत्स्वरूप, स्वप्रकाश, चैतन्य-स्वरूप, श्रीकृष्ण भगवानकी सत्ता और प्रकाश है। उन्हींकी सत्ता और

प्रकाशमे आत्म-लाभकर चराचर विश्व-ब्रह्माण्ड प्रकाश पा रहा है। ऋषिने कहा है—"तमेवभान्तं अनुभाति सर्वं, तस्यभासा सर्वइदं विभाति।" वही प्रकाशमान आत्माके आत्मा श्रीकृष्ण भगवानके प्रकाशमे प्रकाशित होकर, यह परि दृश्यमान जगत प्रकाश पा रहा है। चराचर विश्व ब्रह्माण्डका कोई पारमार्थिक, कोई वास्तविक सत्ता, कोई निरपेक्ष, कोई वास्तव प्रकाश नहीं है। तरङ्गकी सत्ता जैसे जलकी ही सत्ता है। सोनेके हारकी सत्ता जैसे सोनेकी सत्ता है। मिट्टीकी सत्ता जैसे मिट्टीके वर्तनकी सत्ता है; इसी प्रकार सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवान की सत्ताका प्रकाश ही चराचर विश्वकी सत्ता और प्रकाश है। यह चराचर विश्व कृष्णमय है। अतएव ये सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवान हम सवोंकी आत्मा होनेसे, हम सबोंके अत्यन्त पास होनेसे, हम सबोंके सर्वापेक्षा प्रियतम होनेसे, वे हम सवोंके उपपति हैं। एक मात्र श्रीकृष्ण भगवान ही 'पर पुरुप' हैं। और सभी प्रकृति एवं प्रकृतिके कार्य हैं।

नदीका कीनारा सबने देखा है। नदीको दोनों ओरसे दो कीनारों ने घेर रक्खा है। उसकी सीमा बांध दी है। हम सबोंका देहात्माभिमान, हमारी ममत्वबुद्धि, 'मैं' और मेरा, इन भावोंने हम सबो को सर्वदा परिच्छिन्न कर रक्खा है। हमरा मन देहात्माभिमानसे अभिभूत होकर भोगैश्वर्यमे प्रवीण होकर बराबर संसारकी ओर दौड़ रहा है। इस प्रकार घोर संसारासक्त मनुष्य यदि केवल मुखसे उस 'पर पुरुष' सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवानकी कथा कहे, तो उसके उस मुँहसे भगवानकी कथा नहीं सुहाती है। बुद्धिमान

व्यक्ति उसकी निन्दा ही करते हैं। उसका केवल मुँह का ही यह भगवानका नाम उच्चारण होनेसे निरतिशय सुख-स्वरूप स्वर्ग उसे नहीं मिलता है। उसका यह व्यवहार ओछेपनसे भरा है। क्षणिक है और दुःखपूर्ण है।

एक सुनार था। सोना चुराना ही उसने अपना कर्तव्य बना रक्खा था। गलेमें तुलसीकी माला चन्दन और नामावली छापेका चादर लगाकर वह काम करनेको बैठता था। उसने अपने नौकर को बता रक्खा था कि जब वह 'केशव केशव' बोले तो समझना चाहिये कि गाहककी परीक्षा करनेको कह रहा हूं। परीक्षा कर लेने-पर ग्राहक यदि ना समझ हो तो वह 'गोपाल गोपाल' कहे, फिर 'हरि हरि' कहकर पूछ ले कि सोना चुराऊँ? यदि मैं 'हर हर' कहूं तो समझ लो कि चुराने को कह रहा हूं। सुनारका उद्देश्य भगवानके नाम जापका नहीं था। गाहकको ठगनेकी उसने ढोंग रची थी। इसमे "केशव केशव" उच्चारणका उद्देश्य था कि गाहक कैसा आया है? नौकरने उत्तरमे कहा 'गोपाल गोपाल' अर्थात् बुद्धिहीन बैल आया है। तब फिर सुनारसे पूछा गया "हरि हरि" सोना ठग लूँ? सुनारने कहा "हर हर" ठगो ठगो? इस प्रकारका घोर संसारके आसक्त परिच्छिन्न देहात्माभिमानके वशीभूत मनुष्य ही 'कुल-स्त्री' कहे जाते हैं। संसारके सैकड़ों बन्धनोंसे बंधा मानव यदि दूसरेको ठगनेके लिये भक्तिके कपटका बाना बनाता है, तो उसका वह व्यवहार लोकमे निन्दा पाता है; उसे वह स्वर्गसे अलग कर देता है। अन्तमे वह दुःख प्रद भी नहीं होता है। इस प्रकारकी

ठगीके आचरणकी अपेक्षा सात्विक राजसिक और तामसिक अहंकार रूप कंस स्वामीकी आज्ञाका पालन करते हुए; विषयोंका भोग करना ही अच्छा है। क्योंकि इस प्रकारका विषय भोग करते करते विषय भोगके प्रति उपेक्षा पनप सकती है। जो साधक किन्तु सभी तरहसे भगवानके शरणागत हो चुके हैं, अनुक्षण भगवानका ध्यान करते करते जिनके चित्तके राजस-तामस संस्कार या वासना रूप कचरा विनष्ट हो गया है, वही पवित्र हृदय शरणागत भक्त अपने इष्टदेवके मनोहर चिन्मय, आनन्दमय, मूर्तिको देखनेमे तन्मय हो अपने आपको भूल जाते हैं। उनके स्थूल और सूक्ष्म देहों को व्यापकर जो सद्-घन, चिद्-घन, आनन्द-घन, श्रीकृष्ण भगवान सर्वदा प्रकाशमान हैं, उन्हीं रस-स्वरूप भगवानको अपना सब कुछ देकर, उन सत्वोंके स्तरोंमे, उन्हीको पाना ही एक मात्र उन साधकोंका कर्तव्य होता है। वे उस समय भगवाको कहते हैं "**संत्यज्य सर्व विषयान् तव पाद मूलम्**" मैंने सभी विषयोंको पूरी तरह छोड़कर ही आपके चरण कमलका आश्रय लिया है "**प्रष्ठोभवान् तनुभृतां किल वन्धुरात्मा**" शरीरधारी सबके ही आप प्रियतम हैं। बन्धु एवं आत्मा हैं। अतएव आत्म-स्वरूप! प्रियतम! आपको किस प्रकार त्याग करूं? "**पादौ पदं न चलतः तव पाद मूलात् यामः कथं व्रजमथो कर वामकिंवा।**" आपके पाद पद्मसे मेरे दोनों पैर डेग भर भी चलनेमें असक्य हैं. और आपको छोड़ कर कहीं जाकर भी हम क्या करेंगी?"

भगवानने जब देखा कि उनका शरणागत भक्त केवल उनको ही चाहता है, उन्होंने भक्तके हृदयरूप यमुनाके तटपर भक्तके साथ क्रीड़ा करना आरम्भ कर दिया। भक्तका हृदय परमानन्दसे भर गया। भगवानकी उसी आनन्दघन, चिन्मयमूर्तिके स्पर्शसे साधककी आत्मा साधक का 'मैं' साधकका अहंकार, साधकका मन, साधककी बुद्धि, साधकका सारा आनन्दमय कोष; सिहरने लगा। साधक तन्मय होकर दिव्य रसका स्वाद करने लगा। अहंकार रूप कंसके राजस तामस चित्त वृत्ति रूप असुरगण अब प्रायः विनष्ट से हो पड़े हैं। राजस तामस चित्तवृत्ति अन्तःकरणमे उदय लेकर साधकको भगवान से विमुख करनेमें पूर्ण असमर्थ है। अहंकार रूप कंस किन्तु इस समय भी अपने सात्विक गर्व रूप अनुचर को साधकके हृदयमे भेज देता है। भगवानके मधुर स्पर्श जन्य आनन्दमे तन्मय साधक मने मन सोचने लगता है कि—"कैसा अपूर्व रसका स्वाद मिल रहा है? भगवानका दर्शन क्या सभीके भाग्यमे होता है। सभी भक्तोंके बीच एक मात्र हमको ही भगवान प्यार करते हैं। मैं सभी भक्तोंमें श्रेष्ठ हूं।" भक्तके मनमे जब इस प्रकार भक्तिका गर्व उठता है; तब भक्त के हृदयसे भगवानकी वह आनन्दघन चिन्मय मूर्ति अन्तर्ध्यान हो जाती है। भगवान भक्तके सात्विक गर्वको भी दूर करनेके लिये और साधकके हृदयको शान्त करनेके लिये साधकके सामनेसे अन्तर्ध्यान हो जाते हैं।

"तासांतत् सौभग मदं, वीक्ष्यमानश्च केशवः,

प्रशमाय प्रसादाय, तत्रैवान्तरधीयत ॥"

—भा० १०।२९।४८

ब्रह्मा और रूद्रदेवकी भी रक्षा करने वाले सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवान, साधककी भगवन्मुखी सात्विक चित्त वृत्तियां रूपीणि गोपियों में भक्ति विषयक सात्विक गर्वको देखकर, उस गर्वको हटानेके लिये एवं साधकके प्रति कृपा करनेके लिये, साधकके हृदय-रूप यमुना-तट पर सहसा अन्तर्ध्यान हो गये।

साधक अपने इष्टदेवकी अनुपम लावण्यमयी मूर्तिको न देखकर अनुतापसे जलने लगे। करूणा भरे प्राणसे भगवानसे प्रार्थना करते हुए, वे कहने लगे ; "हे प्रभु ! हे प्रणत पालक ! हे पतित पावन ! हे मेरे प्रियतम ! सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण भगवान ! मेरे अपराधोंको क्षमा कीजिये। सैकड़ों विपत्तियोंसे आपने मुझे बार बार बचाया है। फिर इस समय इस महा विपत्तिमें क्यों उदास हैं।" इस प्रकारका पश्चाताप करते हुये साधक आत्म विभोर हो गये।

"तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
तद् गुणानेव गायन्त्यो नात्मा गाराणि सस्मरूः ॥

—भा० १०।३०।४४

साधकका मन भगवन्मय हो गया है। साधककी कर्मेन्द्रियां पूरी तरह भगवन्निष्ठ हो उठी हैं। साधक अन्दर और बाहर श्रीकृष्ण का ही दर्शन करते हैं। एकाग्र होकर केवल भगवानकी स्तुति करते

हुये भगवानको छोड़कर अपना देह और घर आदि सब पदार्थोंको भूल चुके हैं।

साधककी इस प्रकारकी अवस्थाको देखकर दीन दयाल भगवान फिरसे अपनी दिव्य-मूर्तिसे साधकके सामने खड़े हो गये। साधकके देहेन्द्रिय, मन, प्राण, आनन्दसे खिल उठे। श्रीकृष्ण भगवान इस समय साधकके साथ सुमधुर रास-लीला करने लगे।

हमने जिन जिन विषयोंको स्थूल देहसे भोगा है और भोग रहे हैं। जिन जिन विषयोंकी मन-मनमें चिंताकी है और सूक्ष्मरूपसे मन मनमें जिसे भोगा है, या भोग रहे हैं; उन उन विषयोंकी छाप संस्कार तथा वासना हमारे चित्त पर जमते रहते हैं। हमारे मन, प्राण इन्द्रियां तथा स्थूल देहके अणु-अणुओंमें ये संस्कार-वासनायें वर्तमान रहती हैं। वाह्य विषयोंके दर्शनमे, स्पर्शमें, घ्राणमें, स्वादमें, सुननेमें ये सब वासनायें जाग पड़ती हैं। उन उन वस्तुओंके भोगनेको हमे प्रवृत करती हैं। भगवानके स्पर्शको छोड़कर, ये कामनायें किसी भी तरह तृप्त नहीं होती हैं और उनका क्षय भी नहीं होता है। मन कभी भी उनके संकल्प विकल्पोंको छोड़कर स्थिर नहीं होता है। रूकता भी नहीं है। भगवानके दर्शनको छोड़कर, अपने स्वरूपके दर्शन या साक्षात् तथा अपरोक्ष-अनुभूतियोंको छोड़कर किसी भी तरह आत्मतत्वका ज्ञान चित्तमें नहीं उगता है। हमारे स्थूल देहके प्रत्येक अङ्गोंमे, प्रत्येक प्रत्यङ्गोंमे, भोग सुखका एवं दुःखका ; एक संस्कार रह रहा है। यह संस्कार समूह पूरी तरह तभी जाता है ; जब परमानन्द

श्रीकृष्ण भगवानका स्पर्श मिलता है। इसलिये श्रीकृष्ण भगवान इस समय अपने पूर्ण शरणागत भक्त साधकके अहंकारमे, मनसे, प्राणमें इन्द्रियोंमें स्थूल देहके प्रत्येक अङ्गोंमें अपने रसकी तथा अपने आनन्दकी अमृतधाराको प्रवाहित कर देते हैं। इसे पाकर साधकका चित्त प्रशान्त हो जाता है। साधक अपने चित्तके, मनके, बुद्धिके, अहंकारके, प्राणके, इन्द्रियोंके, स्थूलके प्रत्येक कार्योंको, प्रत्येक चेष्टाओंको अब केवल श्रीकृष्ण भगवानके ही सन्मुख रखने लगे हैं। साधकके प्रत्येक चित्त वृत्तियों और प्रत्येक इन्द्रिय वृत्तियोंके साथ परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण भगवान लीलायित होने लगे हैं। साधकके स्थूल शरीरके प्रत्येक अङ्गोंमे, प्रत्यक प्रत्यङ्गोंमें, विषय भोगोंके जन्म जन्मके संचित जो सब संस्कार समूह जड़े थे ; वे सब संस्कार समूह उन उन अङ्गो तथा प्रत्यङ्गोमे अमृत-स्वरूप, आनन्द स्वरूप, श्रीकृष्ण, भगवानके आनन्दघन चिन्मय मूर्त्तिके दिव्य स्पर्शसे परितृप्त हो गये। साधकने अन्दर बाहर और रोम रोममें अमृत-स्वरूप श्रीकृष्ण भगवानका साक्षात् पाकर पूरी तरह तृप्ति पालिया।

यही श्रीकृष्ण भगवानकी रास-लीला है।

नित्य-सत्स्वरूप, परमानन्द-बोध-स्वरूप, श्रीकृष्ण भगवान एक और अद्वितीय हैं। उनके स्पर्श से उनकी त्रिगुणात्मिका माया शक्ति आनन्दमे सिहरने लगती है। श्रीकृष्ण भगवानकी सत्ता और उनके प्रकाशमें ये सत्वरज तमोमयी माया आत्म-लाभ पाकर चिन्मयी हो जाती है। श्रीकृष्ण भगवानके परमानन्दमें सिहर उठती है। इस परमानन्दको, इस अमृतत्वको भोगनेके लिये इस आनन्दको अपने

अधीन लाकर एवं अपने वसमें कर ; पूर्णरूपसे भोग करनेके लिये त्रिगुणात्मिका माया व्याकुल हो उठती है। माया आनन्दमें फड़कने लगती है। मायाके प्रत्येक स्पन्दनोंको एवं प्रत्येक परिणामोंको सत्त्व-रूप, स्वप्रकाश, चैतन्य-स्वरूप, परमानन्द-स्वरूप, श्रीकृष्ण भगवान इसे सत्ता स्फूर्ति या प्रकाश देकर अपने अपने रूपमें बनाये रखते हैं। माया इस परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण भगवानको अपने वसमें लाकर भोग करनेके लिये देश-कालकी मूर्ति बना लेती है। शब्दतन्मात्र, रस-तन्मात्र और गन्धतन्मात्रमें परिणत होकर, बादमे आकाशादि पांचों भूतोमें, अन्तःकरणमें, प्राणमें, इन्द्रियोंमें, परिणत होकर; भोक्ता, भोग्य और भोग तथा द्रष्टा, दृश्य और दर्शन ; ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान ; इन त्रिपुटिरूपको धरकर, व्यष्टि और समष्टिका रूपधरकर ; विराट, हिरण्य गर्भ, देव तथा मनुष्य आदिके भिन्न भिन्न प्रकारोंमे समष्टि और व्यष्टिके भावमें, परमानंदको भोगनेके लिये व्याकुल हो उठती है। हजारों चेष्टा करने पर भी किन्तु परमानंद श्रीकृष्ण भगवानको अपने वसमें लाकर भोगनेमें वह समर्थ नहीं हो पाती है। उसकी सारी चेष्टा विफल होने पर, वह तब श्रीकृष्ण भगवानकी शरणागत हो पड़ती है। जितनी ही शरणागत वह होती जाती है। माया समझने लगती है कि श्रीकृष्ण भगवान ही उसके स्वरूप हैं। उसके आश्रय हैं। उसके अधिष्ठान हैं। तब वह अपने स्वरूपको कभी भी मनका गोचर बनाकर भोग करनेमें समर्थ नहीं होती है। इसलिये माया पूरी तरह से श्रीकृष्ण भगवानकी शरणागति-लेती है। उसके मन-रूप, उसके बुद्धिरूप, उसके चित्तरूप, उसके अहंकाररूप, उसके दश-इन्द्रियरूप,

उसके प्राण-रूप, उसके पंचभूतात्मक स्थूल देहरूप ; तब स्पन्दन रहित हो जाते हैं। उसी समय परमानन्दमें माया घुल जाती है। एक मात्र परमानन्द स्वरूप अद्वितीय श्रीकृष्ण भगवान ही तब प्रकाश पाने लगते हैं। हरिः ओम्॥

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द गिरि रचित्त श्री विश्वनाथ शास्त्री द्वारा अनुवादित रासलीला नामक रासलीला की आध्यात्मिक व्याख्या ग्रन्थ समाप्त।

पुस्तक मिलनेका पता :—

श्री पं० विश्वनाथ शास्त्री

वेद-व्याकरण तीर्थ, आयुर्वेदाचार्य, ज्योतिषार्णव

१०२, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट,

कलकत्ता—७